चन्द

हसीनोंके खुतूत

एक

उग्र कहानी

प्रकाशक

सुलभ ग्रन्थप्रचारक मण्डल

३६, शंकरघोष लेन, कलकत्ता

म बा र]

[मूल्य बारहआने

संपादक—
पाण्डेय बेचन
शर्मा, 'उग्र'

सुलभ ग्रन्
प्रचारक म

बड़ा बाज़ार में—

(मिलनेका पता)

कलकत्ता पुस्तक-भण्डार

१७१ ए, हरिसन रोड

कलकत्ता

प्रेस—
बालकृष्ण प्रे

मुद्रक—

"अच्छे हैं ???" उनके सुन्दर मुख, उनकी सरस आँखोंने पूछा।

"धन्यवाद !" मेरे रोम-रोमने कहा। मैं क्षण-भरके लिये बाइसिकिलसे नीचे उतर उनकी ओर बढ़ा।

"मुझे (उस दिनकी) आपकी कृपा याद है...।"

"मैं, एडेन गार्डन जा रही हूं।" भावसे भृकुटि-विलास करती हुई उन्होंने कहा—"हम प्रायः रोज़ही उधर जाती हैं।"

इससे अधिक कहने-सुननेकी, उस दिन, न तो हममें हिम्मत थी और न समय। वे लोग टैक्सियों पर बैठीं और अपने रस्ते लगीं। मैं भी, आसमानपर पाँव रखता हुआ, अपने रास्ते चला।

उस दिन 'एडेन-गार्डन' में चारों ओर भगवान् सुधाकरकी किरणें ज्योत्सनासे लिपटकर नाच रही थीं। बिजलीकी अनन्त छोटी-छोटी बत्तियोंकी माला उनके गलेकी मणि-मालाकी तरह मालूम पड़ती थीं। मैं शुरू शामसे ही वहां गया था। (वही, 'किसी' की तलाशमें। मगर, शाम क्या दिया जल जानेपर भी

'कोई' दिखाई न पड़ा। मैं मुर्दा-दिल-सा होकर इधर-उधर टहलने और गुनगुनाने लगा—

ऐ काश मेरे दर पर एक बार वे आ जाता,
ठहराव सा हो जाता यों दिल न जला जाता।
तबतक ही खैरियत है जबतक नहीं आता वह,
इस रस्ते निकलता तो हमसे न रहा जाता।

उसी समय "ज़रा ज़ोरसे...!" कहती हुई वह आयीं।

"आज आप अकेली आयीं हैं?"

"सभी हैं।"

"कहाँ?"

"जहाँ जिसका 'जी' है।"

"तो आपका 'जी'...।" (संकोचके मारे मैं यह न कह सका कि आपका 'जी' यहीं है? मगर, आँखोंने कह दिया। उनके हृदयने सुन भी लिया।

"आप लोग," मैंने पूछा—"सबसे मिल-जुल और बोल-चाल सकती हैं?"

"जी नहीं," उन्होंने उत्तर दिया—"हम सबसे

मिल-बोल न सकें इसीलिये तो मिसेज़ किड हमेशा हमारे पीछे पड़ी रहती हैं।"

"आज भी हैं ?"

"हाँ उधर ही कहीं अपने किसी गोरे साथीसे बातें कर रही हैं। मैं तो आपको देखकर इधर चली आयी। मैंने मिसेज़ किडको यूँही बहका दिया है कि आप मेरे जान पहचानी हैं। अच्छा अब, मैं जाती हूं।"

"क्यों ??"

"हा हा हा !" उन्होंने कहा—'यह 'क्यों' की एक ही रही। मानों हम लोग पुराने…।"

बात काटकर मैंने कहा—"हमलोग पुराने परिचित न होते तो आप, मिसेज़ किडसे कहतीं कैसे ?

मुस्कराकर उन्होंने आँख नीची कर लीं। प्रायः दो मिनटतक हम दोनों एक दूसरेके सामने खड़े, एक दूसरेको चुपचाप देखते रहे। बल्कि, पढ़ते रहे। इसके बाद वह बोलीं—

"आपके नामका एक रुक्का है।"

"आपके पास ?"

"जी हाँ, ग़लतीसे भजनेवालेने मेरे ही पास भेज दिया। यह लीजिये।"

एक लिफाफा हाथमें देकर, मेरे रोकने पर भी वह न रुकीं, चली गयीं। लिफ़ाफ़ा सुगन्धसे लदा मालूम पड़ता था। उसके ऊपरकी लिखावट ज़नानी ज़रूर थी, मगर साफ़, खूबसूरत। उसपर इतना ही लिखा था—

"मिस्टर मुरारीकृष्ण"

भीतर गुलाबी रंगके खूबसूरत लेटर पेपरपर तीन लकीरोंमें लिखा था—

"रविवारकी शामको गर्ल्स-कालेज-होस्टलके फाटकपर एक बार मुझसे ज़रूर मिलिये। मेरी क़सम—ज़रूर।

एन—।"

प्रियतम, मैं जानता हूं पत्र बड़ा हो रहा है। मगर, छोटा होनेपर भी तो तुम पसन्द नहीं करोगे। इसीलिये 'विस्तृत विवरण' लिख रहा हूं। अबतक मुझे कभी ऐसा मौक़ा न मिला जो मैं उक्त 'श्रीमती'

का नाम किसी तरह जान पाता। 'एन'—मैंने मनमें सोचा, इस 'एन' अक्षरसे कौनसा नाम संभव हो सकता है ? नलिनी ? मगर वह बंगालकी तो नहीं मालूम पड़तीं। जो हो रविवारको उनसे भेंट होनेपर पहले इस 'एन' की पहेलीका अर्थ पूछूंगा।

उस दिन सोमवार था। फिर रविवारकी शामके आनेमें पूरे ५॥ दिन कई घंटे लगे। मगर मुझे ऐसा मालूम पड़ा मानों बरसों बीत गये रविवार हुआ ही नहीं। जिस दिन वह, बहुत दिनोंसे सोचा हुआ 'रविवार' आया उस दिन न जाने क्यों मेरा मन मारे प्रसन्नताके नाच रहा था। मिलना था शामको ५॥-६ बजे मगर १२ बजेसे ही मैंने तैयारी शुरू कर दी। कपड़ेके ट्रङ्ककी जाँच की। एक-एक लत्ते को आईनेके सामने पहनकर देखा, कौन ज़ियादा ख़ूबसूरत मालूम पड़ता है। जूतेमें (अपने हाथसे) दो-दो बार पालिश किया। उनसे मिलनेके लिये उस दिन जैसी तय्यारी मैंने की थी, वैसी तैयारी ; कभी किसी बातके लिये नहीं की थी। आख़िर वह वक्त भी आया।

चन्द हसीनोंके खुतूत

मैं बाइसिकिलकी घण्टी टुनटुनाता गर्ल्स-कालेज होस्टलकी ओर जाही रहा था कि मेरी 'टीम' में खेलनेवाला (कालेजमें बी० ए० का विद्यार्थी) याकूब अहमद दिखायी पड़ा। वह गर्ल्स-कालेज होस्टलकी ओर से, बाइसिकिल पर, मेरी ओर आ रहा था—

"वाह, वाह! बड़े ठाटबाट! किसकी 'ब्यूटी' का क़िला तोड़ना है?"

"अपनी बदक़िस्मती की। आप कहांसे कहाँ जा रहे हैं?"

"यूँ ही घूम रहा हूं।" उसकी साइक़िल आगे बढ़ी। मैंने कहा—

"आदाब अर्ज़ है, कभी फिर।"

उसने कहा—"बन्दगी अर्ज़ है।"

गर्ल्स-कालिज होस्टलके 'गेट' पर पहुंचते ही मैंने देखा, वह गुलाबी रंगकी सारी पारसी कितसे पहने फाटकके पास ही बगीचेमें खड़ी कोई किताब देख रही थीं। मैंने घंटी दी। उन्होंने देखा!

"मैं भीतर आ सकता हूँ ?" मैंने, फाटकके दर-
नकी पर्वा न कर, उन्हींसे पूछा।

उन्होंने सर हिलाकर मुँहसे कहा—"नहीं,"
आँखे नचाकर इशारेसे कहा—"हां!"

मैं भीतर दाखिल होकर उनके रू-ब-रू खड़ा हो
ा।

"पहला सवाल" मैंने मुस्कराकर कहा—"मेरा
गा। मैं जानना चाहता हूं कि, आपका शुभनाम
ा है ? मुझे याद करनेवाली (या वाले) 'एन'
हब कौन हैं ? 'एन' का मतलब क्या है ?"

उन्होंने कहा—"'एन' मेरी एक सखी है। यही
के नामका पहला हर्फ़ है। उस दिन खेलमें वह
थीं। वही आपसे मिलना चाहती हैं। वही
प पर—।"

"चलिये," मैंने कहा—"मैं उनसे मिलकर अपने
भाग्यवान समझूँगा।"

"मगर" उन्होंने कहा—"हमारी 'वार्डेन' ने उन्हें
पसे मिलनेकी आज्ञा नहीं दी है। हमलोग लड़-

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

कियाँ हैं, आप जानते ही होंगे। हम सभी (एक्स वाई, ज़ड) से नहीं मिल सकतीं।"

"तब," मुस्कराते हुए मैंने पूछा "आपकी 'वार्डेन साहब ने आपको मुझसे मिलनेकी इजाज़त कैसे दी?"

"मैंने झूठ कहकर उनकी इजाज़त पायी है मैंने कहा है कि आप मेरे पुराने जान-पहचानी हैं।"

"फिर ; अब मुझे क्या करना है?"

"मुझसे बातें !"

"कैसी?"

"मेरी सखीके बारेमें। उन्होंने आपसे कुछ सवाल किये हैं।"

"फ़रमाइये।"

"उन्होंने दरियाफ्त किया है कि आपकी 'वाइफ़' का क्या नाम है?"

"वाइफ़ का?" मैंने आश्चर्यसे उत्तर दिया— "मेरी तो शादी ही नहीं हुई है।"

उनका चेहरा मेरी बात सुन कर कमलकी तरह

ड गया। वह ज़रा आगे बढ़कर मेरे पास आ रहीं
र मेरी बाइसिकिलका "हैण्डिल" पकड़कर खड़ी
गयीं।

"मेरी क़सम...?" उन्होंने पूछा।

"मैं क़सम नहीं खाता; पर, मैं अविवाहित हूँ।"

"ब्याह क्यों नहीं करते?" उन्होंने पूछा।

"माफ़ कीजियेगा," उनके व्यवहारोंसे मेरी खुली हिम्मतने बड़ा करारा सवाल किया—"आपकी दी...?"

मुंह लाल हो गया, कान लाल हो गये, नाक ल हो गयी! मालूम पड़ने लगा, ख़ालिस लाबकी पंखड़ियोंकी पुतली मेरी साइकिलका हैण्डल पकड़े खड़ी है!

"आपके सवालका मतलब?" उन्होंने पूछा। नका मुँह बहुत कुछ मेरे मुंहके क़रीब था।

"आपके सवालका मतलब?" मैंने भी छोप खा। मेरा भी मुख (ठीक याद नहीं, संभवतः) नके मुखसे अधिक सन्निकट हो गया। उनकी

चन्द हसीनोंके .खुतूत

साँस मेरी आंखों पर पड़ती थीं। मेरी सासें उनके ओठोंसे टकराती थीं !

"मैं जवाब देती नहीं, माँगती हूं।" खूबसूरत गुस्सेके साथ उन्होंने कहा, साथ ही; उनकी नाकका सिरा मेरी नाकके सिरेसे छू गया! एक आग दौड़ गयी! बिजली छू गयी!!

मैं साधू नहीं, फ़कीर नहीं; मैं महात्मा नहीं, त्यागी नहीं; मैं ऋषि नहीं, मुनि नहीं। सौन्दर्यके उस लबालब भरे प्यालेको देख मेरा मन मचल गया। जीमें आया—"देखते क्या हो? 'गुडलक' होने दो।" फिर क्या—वही हुआ।

अपनी नाकसे उनकी (क्या कहूं किसकी तरह...?) खूबसूरत नाकको, अपने ओठोंसे उनके लाल-लाल परिपक्व-ओठोंको हल्का सा धक्का देते हुए मैंने कहा—"मैं भी जवाब देता नहीं, माँगता हूं।"

"वाहरी हिम्मत! वाहरी हिम्मत!!" कहकर; वह मेरी गर्दनमें छोटे बच्चेकी तरह गुथ गयीं। मारे

चुम्बनोंके उन्होंने मेरा मुंह भर दिया। मैंने, विवश होकर, उन्हें भुजाओंमें कस लिया।

मेरी बाइसिकिल भयानक "झन्न, झन्न" स्वरसे झारोखाने चिल्ल गिर पड़ी ! तब मुझे ज्ञान हुआ ! मैंने सोचा—"पागल हो गया हूं ?" बाइसिकिलने, संभवतः उन्हें भी ज्ञान दिया। वह भी मुझे छोड़, दूर खड़ी हो, सर और कन्धे परके कपड़े ठीक करने लगीं।

"क्या हुआ सरकार ?" फाटकवालेने आवाज़ दी। मैंने कहा—"ज़रा सलाई लाना, लैम्प जलाना है, शाम हो गयी।"

नौकर सलाई देकर चला गया। तबतक हम दोनों होशमें आगये। उन्होंने कहा—

"मेरी शादी हो गयी है।"

"तो, मैंने कहा—"मेरी भी शादी हो गयी।"

आँचलके भीतरसे एक लिफ़ाफ़ा निकालते हुए उन्होंने कहा—

"इसीमें मेरी सखी 'एन' का नाम और पूरा पता है।"

चन्द हसीनोंके खुतूत

मैंने कहा—"अगर आपकी सखीका रूप और हृदय ज़रा भी आपसे भिन्न हुआ तो उन्हें पूर्ण निराश होना पड़ेगा।"

"लिफ़ाफ़ा, घर खोलियेगा। आपका पता 'कलकत्ता कालेज होस्टल' है न ?"

* * * *

घर लौटकर मैंने देखा, लिफ़ाफ़ेके भीतरके कागज़ पर लिखा था—

"मैं लखनऊके मशहूर रईस ख़ानबहादुर मुहम्मद हुसैनकी लड़की हूं। मेरा ही है नाम 'एन' या

—*नार्गिस !'*

मेरे पावँ-तलेकी मिट्टी निकल गयी ! मैंने अभी—अभी एक मुसलमान लड़कीको चूमा है ? मैंने ? जिसकी नसोंमें विशुद्ध हिन्दू-रक्त प्रवाहित हो रहा है। मैंने एक विजातीय बालिकाके चरणोंमें हृदयार्पण किया है ?

पिताजी क्या कहेंगे ? प्रयाग क्या कहेगा ? समाज क्या कहेगा ? देश क्या कहेगा ? फिर, हम दोनोंकी शादी हो ही कैसे सकती है ?

प्रियतम, हमलोगोंकी प्रतिज्ञा है कि, हम विवाहके पूर्व एक दूसरेसे ज़रूर सलाह लेंगे। इस समय तुम्हारी सख्त ज़रूरत है। बन पड़े तो दो-चार दिनोंके लिये यहाँ चले आओ। मेरी रक्षा करो। मुझे सीधे रास्तेपर कर दो। बताओ, इस समय मेरा कर्त्तव्य क्या है ? मैं, मुसलमान-दुहिता सुन्दरी नर्गिस-को हृदयेश्वरी बना चुका हूं। अब क्या करूं ? पिताजीको इस समाचारसे कैसे अवगत करूं ? इसका उनपर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

यदि तुम न आसको तो विस्तृत उत्तर देना। एक-एक बातका, हर एक पहलूसे।

यदि कलकत्ता आना तो 'धरम' छोड़नेको तैयार होकर आना। क्योंकि ; मैंने 'मुसलमानिन' को चूमा है और तुम्हें मुझे चूमना होगा।

तुम्हारा...
हलचलमें पड़ा—
मुरारीकृष्ण

{ ३ }

(पता—)

जनाब अलीहुसेन साहब,

(बार-एट-ला)

No. 00002 Chauk.

Patna City.

हज़रतगंज

लखनऊ

१०—१—२६

मेरे राजा,

यह ख़त (जो मैं पढ़ रही हूं) तुम्हारा लिखा है ? तुम इतने सख्त, ऐसे गुस्सावर हो सकते हो ? इस बातपर एतबार लानेको जी नहीं चाहता। तुम मेरे खुदा हो। तुम्ही इन्साफ़से दूर भागोगे तो मेरी दीनो-दुनिया चौपट हो जायगी। याद करो! 'बड़े दिन' की छुट्टी ख़त्मकर पटना जानेसे पहले, (३१ दिसम्बर सन् १६२५ की १२ बजे रात) मेरे गलेमें हाथ डालकर तुमने कहा था—"मुहब्बत खुदा है, मुहब्बत बहिश्त है और मुहब्बत ही ज़िन्दगीका सबसे अच्छा लुत्फ़ है!" कहनेके लिये ये बात सन् २५ में कही गयी हैं, और आज सन् २६ है। मगर,

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

जाननेवाले जानते हैं कि इस २५-२६ में केवल कुछ दिनोंका ही फ़र्क़ है, जिनकी तादाद १० से ज्यादा नहीं।

क्या मुहब्बत और मुहब्बतके सारे मज़े हमींतक महदूद हैं ? क्या तुम्हारी वहन नर्गिसके दिल नहीं है ? मैं तुम्हें और तुम मुझे प्यार कर सकते हो। इसके लिये हम लोग अपने माँ-बापसे लड़ाई भी कर सकते हैं (और उस लड़ाईमें 'लव एण्ड हार्ट' की दोहाई भी दे सकते हैं।) मगर, यही काम दूसरे नहीं कर सकते ? क्यों ??

ज़रा दो क़दम पीछे हटकर (आजसे ४ बरस पहले जहाँ हम थे उस जगह पहुंच कर) नर्गिसकी हालतपर ग़ौर करो। तुम विलायतसे 'बैरिस्टर' होकर लौटे थे। हमारे घरपर कोई जलसा था। तुम्हारे घरवाले और तुम, हमारे यहां मेहमान थे। मगर, तुमने क्या किया ? अपने मिहरबान 'मेज़बान' के घर चोरी की। सो भी कैसी चोरी ? 'दिल' की ! (गयी होती अदालतमें बात तो लद गये होते।

सारी वरिस्टरी हवा हो गयी होती!) चोरी ही नहीं, तुमने तो सीनाज़ोरी भी की। बड़ोंसे खुद भी उलझ गये, साथही, मुझे भी उलझनेको बहका (हाँ हाँ वहका) दिया! साराका सारा लखनऊ चक्करमें आ गया! लोग कहने लगे—"यह लड़का ईसाई हो गया!" लोगोंकी लुगाइयाँ कहने लगीं—"तोवा! यह लड़की स्कूलमें पढ़कर 'मेम' हो गयी!!"

उस वक्त, अगर कोई तुमको वही वातें लिखता जो तुम आज नर्गिसको लिख रहे हो, तो तुम्हें कैसा लगता? तुमने लिखा है—

"मैं नर्गिसकी इस हरकतको महज़ नादानी और बेवकूफ़ी समझता हूं। उसे इस तरह मुहब्बत करनेका कोई भी हक़ नहीं है। यह तुमने बहुत बुरा किया जो मेरे लखनऊ रहनेपर इस शर्म-नाक क़िस्सेको मुझे नहीं सुनाया। उस वक़्त नर्गिस भी वहीं थी। मैं उसे हर्गिज़ कलकत्ता न जाने देता। लड़कियोंको जितना पढ़ना चाहिये, वह उससे ज़्यादा पढ़ चुकी। उसे नौकरी, वैरिस्टरी या लीडरी नहीं

चन्द हसीनोंके खुतूत

करनी है। मैं जानता हूं, थोड़ी भी आज़ादी देने से इस मुल्ककी औरतें सर पर चढ़ जाती हैं।"

ओ हो हो! मैं सिदके जाऊँ तुम्हारी नसीहतोंके। तुम तो हिन्दुओंके ढोंगी पण्डितोंसे भी बढ़ गये। मैं, बड़े दिनकी छुट्टियोंमें चार दिनोंके लिये घर लौटी हुई अपनी 'जान' को क्यों रंज करती? मैंने उनसे वादा किया था कि उनके 'लव-अफेयर्स' में उनकी मर्ज़ीके ख़िलाफ दस्तन्दाज़ी नहीं करूँगी। ये बात जो तुम्हें सन् २६ में मालूम हुई हैं, मुझे सन २५ के ११ वें महीनेसे ही मालूम हैं। मैंने जान-बूझकर तुम्हें इन बातोंसे आगाह नहीं किया। मैं अपनी नर्गिसको, तुमसे ज्यादा जानती हूं। वह अपनी बातपर जब अड़ जाती हैं तब, उलट-पलट हो कर भी, एक दुनिया उन्हें अपनी तरफ नहीं ला सकती। तुम 'नर्गिस' की इस हरकतको महज़ नादानी समझते हो? क्यों न समझोगे? थोड़ी भी आज़ादी देनेसे इस मुल्ककी औरतें सरपर चढ़ जाती हैं, यह तुम जानते हो। क्यों न जानोगे? मगर हुज़ूर; क्या

बन्दी यह सवाल कर सकती है कि नर्गिसकी जैसी हरकत 'नादानी' कही जाती है वैसी ही हरकतोंसे 'असग़री' आपकी प्यारी कैसे रह सकती है? जो आज नर्गिस करने जा रही है, वही उस वक़्त मैंने भी किया था। भूल गये!

'इस मुल्ककी औरतों' पर आपका 'रिमार्क' एक ही रहा। अपनी 'औरत' की गुस्ताख़ी माफ़ कीजियेगा, क्या मर्दोंके हाथमें औरतोंके दिलो-दिमाग़का, दोनो-दुनियाका बहिश्तो-दोज़ख़का ठेका है? मर्द जिसे कहे, औरत उसीको प्यार करे। उसीके गले पड़े। उसीको 'अपना' बनाये! औरतें गन्दी हैं, औरतें बेवकूफ़ हैं, औरतें ग़ुलाम हैं, औरतें बदतहज़ीब और बेनमाज़ हैं—यानी दुनियामें सबसे ख़राब अगर हैं तो औरतें हैं। फिर; बन्दापरवर! आप मर्द लोग; जो अपनी सफ़ाई, अक़्लमन्दी, बहादुरी और तहज़ीबके लिये मशहूर हैं, औरतोंको नेस्तोनाबूद क्यों नहीं कर देते? यही कीजिये और ज़रूर कीजिये, बड़ा सवाब होगा। दुनिया (अमेरिका, जापान इंग्लैण्ड

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

फ्रान्स, जर्मनी, इटली, रूस, चीन, तुर्की) औरतों-को आज़ादी दे रही है। हुज़ूरके मुल्कके मर्दोंको चाहिये कि दुनियाके ख़िलाफ़ बग़ावत करें। औरतों को जेलोंमें रखें। खाने न दें, देखने न दें, सुनने न दें, प्यार करने न दें और पढ़ने-लिखने तो ज़रूर न दें। अगर आपके मुल्कको 'बाग़े-अदन' और मर्दोंको 'ख़ुदा' कहा जाय तो बुरा न होगा। आपलोग इन औरतों को समझा दीजिये कि इल्म ही वह 'फ़ारबिडेन-फ्रूट' है, जिसका फल खानेकी आज्ञा नहीं। औरत भी, 'आदम' और 'ईव' की तरह, इल्मके पेड़के फल खाकर बाग़ी हो जायँगी, होशमें आ जायँगी। इसलिये जो औरत आप (ख़ुदाओं) की बात न माने, उसे अपनी 'सोशल-पैराडाइज़' (सामाजिक-स्वर्ग) से निकाल बाहर कीजिये। मगर, याद रहे; उनमें [illegible] [illegible] आपकी अक़्लमंदीका ही बनियेगा।

तुमने लिखा है—

"मैं मुसलमान हूँ। ख़ुदा-परस्त, इस्लाम-परस्त और मज़हब-परस्त हूँ। मैं इस बातको हर्गिज़ नहीं

बर्दाश्त नहीं कर सकता कि मेरी बहन, किसी ग़ैर-क़ौम वालेके साथ ब्याही जाय। मैं नर्गिसको ज़हर देकर मार डालूंगा, अपना गला घोंटकर मर जाऊँगा; मगर, इस बेइज़्ज़तीसे बचने की कोशिश करूंगा—बचूँगा।"

यह कैसी बातें हैं, मेरे मालिक। मैंने सुना था हाथियोंके खाने और दिखानेके दांत अलग-अलग होते हैं। मगर, मुझे आजही मालूम हुआ है कि, मर्दोंके दिल भी दो तरह के होते हैं। दिखानेके और; बहकाने के और। तुम मेरे आगे मुहब्बत-परस्त बनते हो और दूसरोंके आगे इस्लाम-परस्त या मज़हब-परस्त! प्यारे; बुरा न मानना। क्या यह दुनिया को धोखा देना नहीं है? अपने को ठगना नहीं है? तोबा, तोबा। तुमने यह ख़त नशे की हालत में तो नहीं लिखा है? नर्गिस को ज़हर देकर मार डालोगे। क्यों?

उसी मुहब्बतके लिये, जिसे हम दुनियाकी सबसे बड़ी नेयामत समझते हैं। उसी मुहब्बतके लिये,

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

जिसे पाकर इन्सान इन्सान हुआ है। उसी मुहब्बतके लिये, जिसका नाम लेकर दुनिया अपना रास्ता तय कर रही है। उसी मुहब्बत के लिये जो खुदा है, दीन है, मज़हब है और क़ुरान पाक है। उसी मुहब्बतके लिये जिसकी तारीफ़ करते-करते हाफ़िज़ और सादी, ख़य्याम और मीर, ग़ालिब और ज़फ़र फ़रिश्तोंकी तरह मशहूर हो गये !

मुहब्बतके लिये ख़ून ? मेरे राजा, तुम पागल तो नहीं होगये हो ?

तुम्हीं सोचो; तुम मेरे सर पर हाथ रख कर कह सकते हो कि, मुहब्बत—कानूनसे, धरमसे मज़हबसे, हिन्दूसे, मुसलमानसे, ईसाईसे, सिखसे, डरता है ? मुहब्बत दिल देखता है ; मज़हब नहीं, कनून नहीं , हिन्दू नहीं, मुसलमान नहीं। मेरे खुदा, अगर तुम 'हिन्दू भी होते तो मेरे ही खुदा होते ; मेरे ही मालिक होते, मेरे ही आक़ा होते ! तुम अगर कल ईसाई हो जाओ, तो भी मैं तुम्हारी ही रहूंगी। तुम मेरी नज़रोंमें वैसेही बने रहोगे जैसे हो। मज़हब

इस दुनियाकी चीज़ है, मुहब्बत उस दुनियाकी। मज़हब, अगर सच्चा मज़हब है, मुहब्बतके रास्तेका रोड़ा नहीं, फूल है।

प्यारे, आज तुम्हारे ही हथियारोंसे तुम्हें हराऊँगी। तुम्हींसे सुनी हुई बातें 'तुम्हारे ख़िलाफ़' तुम्हारे सामने रखूँगी। यह तुम्हारा ही कहना है कि—"पहले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या यहूदी कोई नहीं था। सभी आदमी थे, सभी खुदाके प्यारे बच्चे थे। फिर ? सब लोग मिलकर फिरसे 'आदमी' क्यों नहीं बन जाते ? क्या 'हिन्दू', 'मुसलमान' या 'ईसाई'-'यहूदी' के नामपर आदमियोंमें फूट डालनेवालों-पर खुदा खुश होगा ? क्या यह अल्लाहोअकबरके ख़िलाफ बग़ावत नहीं है ?

* * *

अभी—अभी नर्गिसका एक ख़त आया है। चर्फ़ देखने लायक है। तुम देखो तो—क़सम तुम्हारे क़दमोंकी—रो पड़ो। मेरी प्यारी जान उस 'काफ़िरके बच्चे' पर दीवानी हो गयी है। लिफ़ाफ़े

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

पर आँसू, लेटर-पेपरपर आँसू, एक-एक लाइन पर आँसू! ख़तके साथ उन्होंने हिन्दीकी कई ऐसी किताबें भी भेजी हैं जो मुसलमानोंकी लिखी हुई हैं। कोई 'रहीमकी', कोई 'रसखानकी' कोई 'मुहम्मद जायसीकी', कोई 'नज़ीरकी' और कोई 'कबीर'-की। उन्होंने लिखा है कि ये लोग मुसलमान होकर भी सचाईके पुजारी थे। हिन्दू-धरमकी ख़ूबियोंके क़ायल थे। फिर; अगर मैंने किसी हिन्दूको प्यार किया तो क्या बुरा किया! उनके ख़तका एक हिस्सा है—

"......औरत का दिल ऐसी चीज़ नहीं जिसे आज 'हिन्दू' और कल 'मुसलमानको' दिया जाय। सच्ची औरत अपना आक़ा, अपना मालिक, अपना ख़ुदा एक बार चुनती है—हज़ार बार नहीं। इसीलिये औरतें मर्दों से ऊँची हैं—माँ हैं। मुहब्बत करनेमें अगर कोई निठुरा है तो निठुरा करे। अगर प्यार जुर्म है तो मैं गुनहगार ज़रूर हूँ।" मैंने उन्हें 'अपना' मान लिया है। अब दुनियाकी कोई

भी ताक़त हमें अलग नहीं कर सकती। मैं उनकी हूँ, वह मेरे हैं।

"तुमने लिखा है भाई साहब नाराज़ होंगे। अब्बा तो गोली मार देनेको तैयार हो जायँगे। अच्छी बात है, ऐसा ही होने दो। अब मैं कलकत्तासे घर आती ही नहीं। तुम छोड़ दो, भाई छोड़ दें, अब्बा निकाल दें और अम्मा भी (जो ग़ैर-मुमकिन है) भूल जायँ मेरा भी ख़ुदा है। मैंने तो यह तय कर लिया है, भीख माँगूंगी तो 'उन्हीं' के साथ और तख्तपर बैठूंगी तो 'उन्हींके' साथ।......तुम जानती होगी उनके साथ दुःख उठानेमें भी मज़ा मिलेगा—

लेकर सुघर खुरुपिया पियके साथ
छइबे एक छतरिया बरसत पाथ।

*　　　*　　　*

टूट खाट, घर टपकत, टटियो टूट,
पियके बांह उसिसवां सुक्खै कूट।

"मैं 'ग़ैमकी' इन लकीरोंको चौबीस

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

घंटेमें हज़ार बार ख़ुदाके सामने रखकर दोआ मांगती हूं—

मोहि वर जोग कन्हैया लागऊँ पाय,
तुहूं-कुल पूज देवतवा होहु सहाय।

मैंने जबसे उन्हें पहचाना, तबसे आजतक बराबर ख़ुदासे, मज़हबसे, दिलसे, 'उन्हीं को' मांगा करती थी। अब वह हज़ार कोहेनूरों का एक कोहेनूर मुझे मिल गया है।

सब कुछ ख़ुदासे मांग लिया उनको मांग कर,
उठते नहीं हैं हाथ मेरे इस दोआ के बाद।

मैं उनकी हूं, हज़ार बार उनकी हूं, हज़ारमें उनकी हूं।"

देखा तुमने? यह मेरी बन्दिश नहीं, तुम्हारी बहन नर्गिसकी चिट्ठी है। उनके दिलमें वह मुहब्बत नहीं जो दुनियावी दिक्क़तोंसे घबरा उठे। उनका दिलोदिमाग़ भी उन्हीं चीज़ोंसे बना है जिनसे तुम्हारा, फिर वह तुमसे कम हठीली कैसे हो सकती हैं?

फिर आओ न 'माइ लव'! हम लोग थोड़ी हिम्मत-

से काम लें। एक वार जी कड़ाकर दुनियाके आगे एलान कर दें कि—"हमारा सबसे बड़ा मज़हब प्रेम है, मुहब्बत है। हम मुहब्बतसे बढ़कर किसीको (खुदाको भी) नहीं मानते।" मुहब्बत दुनियाकी रूह है। वह किसी खुदाका जल्वा नहीं बल्कि; 'मूसाके' दिलकी मुहब्बत थी जो 'तूरपर' एकाएक उसकी आंखोंके आगे चमक गयी। मुहब्बतने मूसाको हज़रत मूसा बनाया है। बिना मुहब्बतके खुदा, खुदा नहीं, मज़ाक रह जाता है। इसीसे तो हज़ारोंने कहा है (और मैं भी कह रही हूं) मुहब्बत ही खुदा है। दुनियाको खूंरेज़ी, नफ़रत, दुश्मनी, नाइत्तिफ़ाकी और गुस्सेसे दूर रखने के लिये—खुदा के परदे में—मुहब्बत ही अपनी पूजा करा रहा है। फिर हम मज़हब, ज़ात, रंग और रिवाज पर, क्यों जायं? सीधे मुहब्बत—खुदाके खुदा—के पास क्यों न जायँ? मुहब्बतका नाम लेकर ईसा मुस्कराता-मुस्कराता 'क्रूस' पर चढ़ गया था, मुहब्बतका नाम लेकर हज़रत मुहम्मदने इस्लामका झण्डा ऊँचा

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

किया था। जहाँ तक मेरी ('यू'+'आई'='माइसेल्फ़') 'स्टडी' है, मैंने दुनियाके सभी बड़े 'आदमियोंको' मुहब्बत और सिर्फ़ मुहब्बतके नामके नारे बलन्द करते पढ़ा है, सुना है—देखा-सुना है। 'विंद्रावन' का 'किशन' मुहब्बतका पैग़ाम लेकर आया था, 'कपिलवस्तु' का 'गौतम' मुहब्बतका पैग़ाम लेकर आया था, (इसे पचासों बार तुमने ख़ुद कहा है)। आजके (ख़ूँरेज़ीके, नफ़रतके, डाकेके, लूटके) ज़मानेमें भी, इन्सान नामके 'जानवरोंके' दिलोंका दिल, उन्हीं को बड़ा आदमी, मानता है जो मुहब्बत के नाम पर मर मिटे हैं या मर मिट रहे हैं। कार्ल मार्क्स-टाल्सटाय-लेनिन, शेक्सपियर-सादी-तुलसी या कमाल-अब्दुलकरीम-ज़गलूल' या (याद है? जिनके नामपर बैरिस्टरी छोड़ने जा रहे थे?) गान्धी। मैं संसारके सभी पैग़म्बरों और अवतारोंको—अधिकसे अधिक...'आदमी' समझती हूं। मूसा हों या ईसा; मुहम्मद हों या किशन; गौतम हों या मैज़ीनी—सभी आदमी थे। 'आदमीसे' बढ़कर कोई नहीं

हो सकता। मगर हाँ, सच्चा 'आदमी' होना बहुत दुश्वार है।

फिर आओ न मेरे मालिक! हम लोग एलान कर दें कि हम—"पहले 'आदमी' हैं, फिर हिन्दू या मुसलमान या कोई और।" आजकलकी दुनिया धरमसे, रिवाजसे, ज़ातसे, गुट-बन्दीसे, गोरेसे-कालेसे, हिन्दूसे, मुसलमानसे घबरा गयी है। लोग जल्द ही आदमियोंके छुटकारेका कोई अच्छा रास्ता ढूँढ-निकालनेकी फ़िक्रमें हैं। आंख रख कर अंधा बनना ठीक नहीं। आओ, हम 'यूनिवर्सल ब्रदरहुड' फैलानेवालोंकी मदद करें। इससे खुदा (अगर वह है) ज्यादा खुश होगा।

मेरी प्यारी नर्गिसको सहारा दो। उसे दुनियाकी झिड़कियों; लानतमलामतों और फिटकारोंसे बचाओ। उसके दिलमें खुदाके जल्वाकी तरह अगर मुहब्बत चमक रही है तो, उसे चमकने दो। और ऐसी पाक मुहब्बतसे अन्धी दुनियाको आंख पाने दो।"

अब मुझसे ज़्यादा बहस न करना। मैंने लण्डन.

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

जाकर बैरिस्टरी नहीं पास की है। इस इल्ममें (यानी बहसमें) तुम हमेशाके एकही हो। मगर जहाँ 'दिलका' सवाल हो वहाँ बहस करना कहाँतक ठीक है यह तुम जानते हो। इसीसे कहती हूं।

एक बात और लिखकर ख़तको ख़त्म करती हूं। वह यह, कि; अब मैं तुम्हें छोड़कर अकेले यहाँ (लखनऊमें) नहीं रहना चाहती। पटनामें तुम्हारी बैरिस्टरी चले या न चले। मैं अपने दिलके खुदाको बैरिस्टरीके लिये नहीं छोड़ सकती। सीधेसे नहीं ले चलोगे तो एक दिन मिसेज़ ए० हुसेन ख़ुदही पटना-में दिखायी देंगी। पहाड़ मुहम्मदके पास नहीं आयेगा तो, मुहम्मद ख़ुद पहाड़के पास जायगा। समझे ?

तुम्हारी ही

—असग़री

नोट—यह ख़त किसी मुल्ला, हाजी या मौलवीके हाथमें न पड़े—होशियार रहना! इसपर अख़बार वालोंकी नज़र न पड़े—ख़बरदार रहना! —"अ"

(पता—)

पण्डित मुरारीकृष्ण शर्मा

Rooom No. 36,

Calcutta-College Hostel,

Calcutta.

चन्द हसीनोंके खुतूत

लाठी-महाल,

कानपूर

३१ मार्च १९२६

प्यारे मुरारी,

१९-११-२५ का लिखा और पोस्ट किया हुआ तुम्हारा पत्र तुम्हारे प्रियतमके हाथोंमें २८ मार्च सन् १९२६ को पड़ा। इसमें न तो पत्रका दोष है, न मेरा और न तुम्हारा ही। सुना है तुम एक वर्षसे वरावर कलकत्ताही में हो, प्रयाग लौटे ही नहीं। मैं एक वर्षतक जेलमें था, दुनियामें था ही नहीं। जेल जानेके पूर्व एक वार जीमें आया था कि, वहुत दिनोंसे ख़त-कितावत बन्द है तो क्या इस जीवित-श्मशान-यात्राका संवाद तुम्हारे कानोंतक पहुंचा दूँ। मगर, फिर, कुछ सोचकर उस इच्छाका दमन ही करना

चन्द हसीनोंके खुतूत

उचित समझा। इसका एक कारण था। मैं जानता हूं और तुम भी जानते हो, ऊपरसे शान्ति और प्रसन्नताकी मूर्त्ति बने रहते हुए भी तुम्हारे धनी-घरवाले, तुम्हारे 'समाज-सम्मानित'-घरवाले, तुम्हारे 'कैपिटलिस्ट'-घरवाले, यह नहीं चाहते कि उनका 'सोने' का अमीर-मुरारी 'मिट्टीके' ग़रीब-गोविन्दसे—दूध-पानीकी तरह, मिश्री-तृणकी तरह, पान-पत्तेकी तरह मिल जाय। तुम्हें याद होगा। असहयोग आंदोलनके समय जब हम तुम एक साथ बैठकर 'यंगइण्डिया' पढ़ा करते थे और महात्माजी-के मतोंपर अपनी सम्मति दिया करते थे उस समय तुम्हारे "रिटायर्ड डिप्टी कलेक्टर" बाबूजी कैसी कटूक्तियोंसे काम लेते थे। "सब ढोंग हैं। यह सब कुछ बिगड़े-दिमाग़ोंकी ख़राबी है। यह अँग्रेज़ी राज है। इसके ख़िलाफ़ होने पर अच्छे-अच्छे रगड़ दिये जाते हैं। महात्मा गान्धी यह बुरी आग लगा रहे हैं। इससे देशका सर्वनाश हो जायगा। कितने घर उजड़ जायँगे, कितने मर

मिटेंगे। सब ढोंग है। जिसे कोई काम नहीं, वही लीडर है। जिसे कोई रोज़गार नहीं, वही व्याख्यान-बाज़ी करता है। अंग्रेजी-राज्य राम-राज्य है। इसमें कोई दुख नहीं, कोई तकलीफ़ नहीं!" आदि, आदि। ये बातें मुझे बहुत बुरी मालूम पड़ती थीं। साथ ही, तुम्हें भी कम बुरी नहीं मालूम पड़ती थीं। क्योंकि, मैं तुम था; तुम मैं थे। क्योंकि, मैं 'प्रियतम' था; तुम 'प्यारे' थे। क्योंकि, मैं प्रभात था; तुम बालारुण थे। क्योंकि, मैं मन्द-मलय-समीरण था; तुम कुसुमित-बसन्त थे। क्योंकि, मैं अधर था; तुम चुम्बन थे। क्योंकि, हम एकही तरङ्गमें बहते थे; एकही स्वरमें बोलते थे; एकही लयमें गाते थे; एक ही गतमें नाचते थे। तुम 'मैं' थे, मैं 'तुम' था। तुम्हारे रक्त और मांसके स्रष्टा, तुम्हारे रक्त और मांसके मालिक, तुम्हारे हृदयको भी—ज़बरदस्ती—अपनी मुट्ठीमें रखना चाहते थे। वह यह नहीं बर्दाश्त कर सकते थे कि उनके रचे हुए खिलौनेको छातीसे लगाकर

चन्द हसीनोंके .खुतूत

संसारका कोई अ-सुखी, अन-धन और अकिञ्चन अमरत्वका आनन्द ले।

प्यारे! तुम्हें याद होगा, (क्योंकि उस घटनाको तुम कभी भूलही नहीं सकते) हमारे उस सुख-स्वप्नको तुम्हारे पिताजीने तोड़ा था। उन्हें विश्वास होगया था कि हम दोनों एक साथ रहेंगे तो "गाँधीकी आँधीमें" बह जायंगे। और उन्हींके शब्दोंमें—"गाँधीका अनुकरण करना मूर्खता है। हमें कमी किस बातकी है जो हम अंग्रेज़ी राज्यका विरोध करें? ज़मीन्दार हम, धनी हम, विद्वान् हम, सरकार द्वारा सम्मानित हम। क्या स्वराज्यमें कुछ इससे बहुत मीठे लड्डू मिलेंगे?" यह सब वेवकूफ़ी है।" बस, एक दिन उन्होंने प्रयागके स्कूलसे तुम्हारा नाम कटाया और रातो-रात— उफ़! उफ़!!—तुम्हें हमारी नज़रोंसे छीन-कर ले भागे! और फिर, जब तक कि मैं स्वदेश प्रेमके नामपर ६ महीने के लिये जेलमें नहीं ठूंस दिया गया तबतक मैं बराबर, कलकत्तामें,

तुम्हें 'गार्ड' करते रहे। पत्र तक नहीं लिखने देते थे। यह तुमने स्वयं लिखा था। अपने पिता-की उस कृतिसे तुम कितने दुःखित, लज्जित और क्षुब्ध हुए थे—याद है ? तुम्हारा वह पत्र अभीतक मेरे पास है जिसमें तुमने लिखा था—"प्रियतम, यदि मेरा वश चलता तो मैं प्राण छोड़कर, उड़कर तुमसे जेलमें मिलता। तुम जेलमें 'निर्दोष' होनेपर भी, पवित्र होनेपर भी, अनेक प्रकारके कष्ट उठा रहे हो और मैं यहाँ आनन्दसे जीवन व्यतीत कर रहा हूं ! मेरा तुममें, तुम्हारे पथमें, तुम्हारे उद्देश्यमें पूर्ण विश्वास है। मैं जानता और समझता हूं कि मेरे पूज्य पिताजी तुच्छ मोह और स्वार्थके भ्रामक पथपर हैं और मुझे भी बरबस घसीट रहे हैं। पर, सबकुछ जानकर भी कुछ नहीं कर सकता। मुझ-में इतनी शक्ति नहीं कि पिताजीका खुले शब्दोंमें विरोध करूँ। हज़ार सुख होते हुए भी मैं उनके भयानक क्रोधमें पला हूं। मेरे हृदय पर भयसे शासन करते-करते मेरे शासक (डिप्टीकलेक्टर)

चन्द हसीनोंके .खुतूत

पिताजीने मुझे कायर बना दिया है। मैं नीच हूं, मैं अधम हूँ, मैं कायर हूं। मैं तुम्हारा—अपने प्राणोंके प्राणका—विपत्तिमें साथ नहीं दे सकता। पिताजी नहीं रहते तो सब कुछ सोचता हूं। यह भी निश्चय करता हूं और वह भी। मगर, उनकी आखें ज्योंही मेरी आखोंसे मिलती हैं, मैं सत्पथसे विचलित हो जाता हूं। यद्यपि यह कहने के लिये तुम मुझपर अनेक बार नाराज़ हो चुके हो, मुझे प्रेम-पूर्ण दण्ड भी दे चुके हो; मगर, मैं पुनः यही कहता हूं कि मैं अपने पिताजीको, प्रेमसे नहीं; भयसे देखता हूं। वह पहले डिप्टीकलेक्टर हैं, फिर पिता! वह पहले शासक हैं, फिर देवता! मैं ईश्वरसे नित्य यही प्रार्थना किया करता हूं कि वह मुझे वह शक्ति प्रदान करे जिससे मैं निर्भय होकर, आवश्यकता पड़नेपर, अपने पूज्य पिताका सादर-विरोध कर सकूं। तुम्हारे प्रेमकी दोहाई; जिस दिन मुझमें इतनी शक्ति आ जायगी उस दिन मैं अपनेको धन्य समझूँगा। और फिर, जीवनमें,

मरणमें, विहारमें, रणमें, सम्पत्तिमें, विपत्तिमें, जेलखानेमें और फाँसी घरमें, कहीं भी, तुम्हारी छाया न छोड़ूंगा। आज भी, मेरे हृदयकी पवित्रताके स्रष्टा तुम्हीं हो; आज भी, मेरी हृदय-गंगाके हिमाञ्चल तुम्हीं हो।"

मुझे तुम्हारे पत्रका यह अंश बहुत अच्छी तरह याद था, इसी लिये और; मैंने तुम्हें अपनी 'लेटेस्ट' जेल-यात्राकी सूचना नहीं दी। सोचा, कहीं तुम अपने पितासे विद्रोह कर बैठो और हमारे नेतृत्वमें आ रहो तो और भी मुश्किल हो जाय। ज़रा आँखें खुलनेपर मालूम होता है कि दुनिया ठीक वैसीही नहीं है जैसी हम सोचा करते थे। यह तो बड़ा भयानक रास्ता मालूम पड़ता है भाई। इस पथपर ऐसा कोई पथिक नहीं जिसके पाँव न थरति हों। चारों ओर हाय हाय हाय हाय! कर तो डर, न कर तो भी डर। झूठ बोलना भी पाप और, सच बोलना भी पाप। सज्जन होना, उदार होना, सहृदय होना, मनुष्य होना, तो महापाप है।

समय 'माँ' भी वहीं थीं। तुम्हारी चर्चा चलनेपर उन्होंने कहा—

" 'बड़े', वह तो हम लोगोंको बिलकुल भूल सा गया है। एक सालसे ऊपर हो चला वह माँ को एक बार भी देखने नहीं आया। मैं 'छोटे' को ऐसा निर्दयी नहीं समझती थी। मैंने इनसे (तुम्हारे पिताजीकी ओर देखकर) हज़ार बार कहा कि छोटे को यहीं बुला लें। अब उसे कालेजसे अलग कर दें। समझा-बुझाकर ब्याह दें। ज्यादा पढ़-पढ़ कर वह बे-हाथ हुआ जा रहा है। वही हमारे बुढ़ापे की लकड़ी है? वही हमारे धन-धान्य-की श्री है, वही हमारा सर्वस्व है। दशहरी बीत गयी, दीवाली बीत गयी और मेरे बच्चेने मेरे हाथ से दूधका कटोरा नहीं लिया। अब क्या फिर जनम लेना है? अब क्या फिर-फिर पुत्र-सुख पाना है?"

क्षण भरके लिये रुककर और तुम्हारे पिताजी-के मुखकी ओर प्रश्न-वाचक दृष्टिसे देखकर उन्होंने फिर आरम्भ किया—

कुलीकी तरह खटने पर पेट भर भोजन मिलता है। डिप्टी कलेक्ट्री कुछ ज़हर नहीं है। उसीके प्रताप-से आज इतनी मान-मर्यादा है। मैंने अगर 'छोटे' को डिप्टी कलेक्ट्रीके पथ पर न लगाया होता तो वह भी आज तुम्हारे इन (मेरी ओर इशारा कर) 'बड़े' की तरह घरका न घाटका होता। कहीं लेक्चर देता होता और कहीं 'मुठिया' तहसीलता होता। कहीं अदालतमें दिखायी पड़ता, कहीं जेलमें। तुम केवल प्रेम दिखाना और आँसू बहाना जानती हो। मगर, दुनिया केवल प्रेम और आँसू ही नहीं है।"

माँने, पिताजीकी बातोंका विषय बदलना चाहा। उस समय उनकी आँखें पुकार रही थीं कि, 'छोटे' के विषयपर पति और पत्नीका मत एक होना असम्भव है। उन्होंने फिर मुझसे पूछा—

"बड़े, तू अपना व्याह क्यों नहीं करता? एक बार जेल गया, दो बार गया—अब कब तक देश और गांधीजीके नामपर संसारी बातोंसे अलग

से, इच्छा होगी विधवासे। जो में आयेगा ब्राह्मण-बालिकाका पाणि-ग्रहण करूँगा, जीमें आयेगा किसी विजातिनी या विदेशिनीका। फिर, तुम्हीं बताओ माँ! इस व्यापारसे तुम प्रसन्न होगी? समाज खुश होगा?"

"यह भी कोई व्यापार है?" तुम्हारे पिताजी पुनः रूखे पड़े—"उच्छृङ्खलताको तुम 'व्यापार' कहते हो? यह तो समाजका और उसके नियमोंका सरासर अपमान करना है। समाजकी आज्ञा विना विधवा-विवाह या असवर्ण-विवाह प्रचलित करना महा मूर्खता है। कमसे कम ऐसी कल्पना कोई समझ-दार आदमी तो नहीं कर सकता।"

मैंने कहा—"क्षमा कीजियेगा। अगर मैं किसी मुसलमानिनसे अपना व्याह करूँ तो आपको मुझसे सम्पर्क रखनेमें कोई आपत्ति तो न होगी?"

"मुसलमानिन से??" भवों पर बल देकर उन्होंने कहा—"तुम तो तुम्हीं अगर मेरा ख़ास लड़का भी ऐसा दुराचरण करे तो मैं उसे घरसे बाहर निकाल

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

दूँ। मैं ब्राह्मण हूं, मैं सनातनी हूं। इस नये-युगके क्षणिक और अशुद्ध प्रवाहमें मैं, प्राण देकर भी, अपनी पवित्र धाराको नहीं मिला सकता। महाशयजी, बाबू साहब, भैयाजी, अभी इस देशमें इस मतका प्रचार नहीं होगा—नहीं होगा—नहीं होगा।”

   

यह तुम्हारे पिताजीकी राय हैं। और, मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे अपने विश्वासपर दृढ़ हैं। अब तुम पूछ सकते हो कि—“तुम्हारी क्या सम्मति है?” इस प्रश्नका उत्तर हम तुमसे मिल कर ही देसकते हैं। तुम्हारी प्रकृति और तुम्हारी परिस्थिति पर विचार करनेसे मैं तो यही सोचने लगता हूं कि,

यह भी मुश्किल है वह भी मुश्किल है
सर झुकाए गुज़र करें क्यों कर।

मेरा कलकत्ता आनेका इरादा पक्का है। मगर तुमने 'धरम' लेने और 'चूमने' का निमन्त्रण दिया है। इस निमन्त्रणके लिये तैयार होकर आना होगा।

अभी बीबी नौकरशाही के मायके से आ रहा हूं। दाढ़ी रास्पुटिनकी तरह बढ़ी हुई है। सरके बाल जटाधारी की सम्पत्ति हो रहे हैं। तुम भावुक ठहरे, सौन्दर्योपासक ठहरे, 'नर्गिस'-वल्लभ ठहरे—मेरी लम्बी दाढ़ीको कैसे अपनाओगे? इसी-लिये, जल्द से जल्द, थोड़ा बहुत 'चिकना' होकर तुम्हारी भुजाओंमें आ रहा हूं।"

सम्भवतः ७-८ अप्रैल तक आऊंगा। मगर; एक शर्त है। एक दिन तुम्हें उनको ज़रूर दिखलाना पड़ेगा; जिनकी आँखें ठीक वैसी ही हैं जैसी मेरी और, जो तुम्हारी नज़रोंमें मेरी बहनकी तरह हैं।

आशा है, कलकत्ता आने पर तुम्हें 'स-चुण्डी' और 'स-धोती' देखूंगा; 'अ-चुण्डी' और 'स-लुंगी' नहीं।

तुम्हारा ही, प्यारे
श्रीगोविन्दहरि शर्म्मा

(५)

(पता—)

मेरे, मुरारीकृष्ण,

Room No. 36,

Calcutta-College Hostel ;

Calcutta.

जकरिया स्ट्रीट,

कलकत्ता

(बारहबजे रात)

......!

क्या क्या लक़ब हैं शौक़के आलम में यार के
काबा लिखूं कि, क़िब्ला लिखूं या खुदा लिखूं।

वाह वाह वाह वाह ! तीस बार सूरज निकला और डूब गया। लम्बे-लम्बे दिन चमके और स्याह पड़ गये ; बड़ी-बड़ी रातें आयीं और चली गयीं ; मगर, तुमने एक पुर्ज़ा तक नहीं भेजा ! इसी बीचमें मैंने दो ख़त तुम्हारे नाम कलकत्ता-कालेज-होस्टलके पतेसे भेजे, मगर, कोई नतीजा नहीं। तुम तो ऐसे नहीं थे। मेरे दिल, मुझे माफ़ करना, क्या पत्थर-परस्त पूरे पत्थरही होते हैं ?

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

तुम दे जानेको थे, रामायणकी एक अच्छी कापी ; क्यों नहीं दे गये ? मेरे पढ़ लेनेके बाद—तुम ले जानेको थे, प्रेमचन्दका 'सेवासदन,' मैथिली-शरणकी 'भारत भारती' और चतुरसेन शास्त्रीका 'अन्तस्तल,' क्यों नहीं ले गये ? हफ्तोंसे ये किताबें मेरी मेज़की छातीपर सवार हैं। मैं तुम्हारी हूं, मेरी मेज़ तुम्हारी नहीं है। उस 'अनबोलती और अबला' पर ऐसा जुल्म क्यों कर रहे हो ? तुमने कहा था कि…"१५ मईको तुम्हारा हिन्दीमें एम्तेहान लूंगा। देखूंगा ६ महीनेमें तुम उसे कितना समझ सकी हो।" फिर ? क्या हुआ उस एम्तेहानका ? क्यों नहीं आये ? बेरहम, तुम क्या जानोगे कि तुम्हारे एम्तेहानमें 'पास' होनेके लिये मैंने कितनी मिहनत, कितनी दिलचस्पी और कितनी कोशिशोंसे हिन्दी पढ़ी है। सैकड़ों किताबें फांक गयी। पचासों कापियाँ रँग डालीं। पूरी 'विदुषी' एण्ड 'विशारदा' की लियाक़त हासिल कर ली। मगर, तुम न आये—न आये ! इसका क्या मतलब है ? क्या तुम चाहते

हो कि तुम्हारी बाँदी नर्गिस भी, 'मीरा' की तरह एक-तारा हाथमें लेकर 'मुरारी' के पीछे धूनी रमा दे! और, 'मेरे तो गिरिधर गुपाल दूसरो न कोई' की तानसे ज़मीन और आसमानको दहला दे? ऐसा भूलकर भी न सोचना। किताबोंकी मीराने 'कालेज' में 'इङ्गलिश' नहीं पढ़ा था और तुम्हारी 'नर्गिस' ने पढ़ा है। वह तो ज़रूरत पड़ने पर, मुहब्बतसे मुस्कुराकर कह देगी कि—"मधुकर, हम न होंहि वह बेली!"

अच्छा अब ज़रूरी बातें सुनो। मैं कलसे 'ज़कारियास्ट्रीट' में अपने अब्बाके एक दोस्तके घरमें आ गयी हूं। इधर दो-तीन दिनोंमें दो-तीन बातें बड़े मार्केकी हुई हैं। जिनमें पहली बात यह है कि वह 'याक़ूबका बच्चा' (अब मैं उसे इसी नामसे पुकारूंगी) परसों फिर मुझसे मिलनेके लिये होस्टलमें आया था। वही, शामका वक़्त था जिस वक़्त तुम पहली बार मेरे हुए थे। मैं तुम्हारे ही इन्तज़ारमें होस्टल-गेटके सामने वाले बगीचेमें

चन्द हसीनोंके .खुतूत

टहल रही थी और क्या जाने किस-किस उधेड़-बुनमें मशगूल थी। एकाएक फाटक पर बाइसिकिल की घण्टीकी आवाज़ सुनायी पड़ी। मैं सिहर उठी। आंखें भर आयीं, चेहरेपर खून दौड़ने लगा। दिलने सोचा 'तुम आये !!' मगर कहाँ ? बाइसिकिल वाले पर नज़र पड़ते ही दिलकी मुहब्बतने नफ़रतका जामा पहन लिया। वह याकूब था !

"आपको मेरी उस दिनकी बातें याद नहीं रहीं न ? आपने अभी उस काफ़िरसे अपनेको अलग नहीं किया—क्यों ?"

मुझे बड़ा गुस्सा आया। मैंने तीखी आवाज़से उससे सवाल किया—

"आप किस हैसियतसे यहाँ बराबर तशरीफ़ ले आते हैं ? किसके 'परमिशन' से ?"

" 'परमिशन' और हैसियत ?" उसने मुँह बिगाड़-कर जवाब दिया—"मैं उसीके 'परमिशन' से आता हूं जिससे मुरारीकृष्ण आता है। रही हैसियत की बात, सो, क्या आपकी नज़रोंमें एक शरीफ़ और

पढ़े-लिखे मुसलमानकी हैसियत या इज़्ज़त उतनी भी नहीं जितनी एक काफ़िर की?"

"बस ख़त्म कीजिये," मैंने कहा "आपकी ये बात मैं नहीं सुनना चाहती—नहीं सुन सकती। आप मेरे मालिक नहीं, गार्जियन नहीं। फिर मैं अपने मालिक, गार्जियन और ख़ुदाकी बातें भी 'उनके' ख़िलाफ नहीं सुन सकती। आप मेरी भलाईके ख़्वाहाँ हैं, मैं शुक्रिया अदा करती हूं। बस। अब आप तशरीफ़ ले जायं।"

उसने कहा—"नर्गिस;"

मैंने कहा—"चुप रहिये! मेरी मर्ज़ीके ख़िलाफ़ मेरा नाम लेकर इस तरह पुकारते हुए 'एक शरीफ़ और पढ़े-लिखे मुसलमान' को शर्म आनी चाहिये।"

उसने कहा—"ऐसी बे-वफ़ाई ठीक नहीं। मेरी हालत पर रहम करो। मैं ख़ुदाकी क़सम खाकर कहता हूं नर्गिस, मैं तुम्हें प्यार करता हूं।"

"हा हा हा हा!" मैं हँसी—

कैसी वफ़ा, कहां की मुहब्बत, किधर का मेह्र
वाकिफ़ ही तू नहीं है कि होता है प्यार क्या?

चन्द हसीनोंके खुतूत

प्यार धमकाता नहीं। प्यार किसीके रास्तेका काँटा भी नहीं बनता और न बेशर्म ही होता है। मियाँ, तुम क्या जानो प्यार क्या है?"

उसने कहा—"मेरा प्यार मुसलमानका प्यार है। हिन्दूका प्यार बरफ़की तरह ठण्ढा होता है, मेरा प्यार आगकी तरह धधकता हुआ है।"

"आग लगे तुम्हारे प्यारकी आगमें" मैंने गुस्सेसे कहा—"अब आप अपनी प्यारकी आगको मेरी आखोंसे दूर ले जाइये। मुझे ज्यादा जलाइये मत।"

उसने कहा—"तुम आगसे खेल रही हो!"

मैंने कुछ भी जवाब नहीं दिया। आँखें फेर लीं।

"क़सम खुदा की" नाक फुलाकर और मुंह लालकर उसने कहा—"चाहे मेरी जान चली जाय, मगर, मैं तुम्हें उस हिन्दू बच्चेके साथ हँसते देखना नहीं मंज़ूर करूँगा। याद रखो! अगर इस मामलेमें तुम नादानी और नासमझीसे काम लोगी तो पछताओगी। ख़ून हो जायगा।"

वह बकता ही रहा और मैं होस्टलकी ओर

लौटी। दिलमें आया कि उसी वक्त तुम्हें एक तार देकर फटकारूँ कि तुम इस याकूबके बच्चेसे मुझे क्यों नहीं बचाते ? मगर फटकारती किस बूते पर ? तुमने तो महीने भरसे मेरी ख़बर तक नहीं ली। एक बार सोचा—इसी वक्त कलकत्ता-कालेज-होस्टलमें जाकर तुम्हें ढूंढू। मगर, फिर तुम्हारी बातें याद आयीं। तुमने होस्टलमें न आनेके लिये मुझसे वादा करा लिया है। तुमने कहा था कि—"कालेज-होस्टलोंके निन्नानवे फ़ी-सदी युवक इस योग्य नहीं होते कि शरीफ़ औरतें उनके बीचमें घूम फिर सकें।" लाचार, मैं झखमार कर अपने रूममें जाकर पड़ रही। मगर फिर भी चैन न पड़ा। तुम बहुत याद आये—बहुत याद आये। प्यारे, क्या दिलकी इसी कचोटका नामही मुहब्बत है ? क्या मुहब्बतके नाम 'लम्बी साँसे' 'आँसू' और 'बेकल-करवटें' हैं। आह !

न था मालूम उलफ़तमें कि ग़म खाना भी होता है,
जिगर की बेकली औ' दिलका घबराना भी होता है।
सिसकना, आह करना, अश्क भरलाना भी होता है,
तड़पना, लोटना, बेताब हो जाना भी होता है।

चन्द हसीनोंके खुतूत

यही सब सोचते-सोचते मेरी आंखें लग गयीं इसके बाद किसीने खानेके लिये जगाया था ऐस याद आता है, मगर, मैं खाती क्या। मेरी भूख तो महीने भर से न जाने कहां ग़ायब हो गयी है।

दूसरे दिन सुबह-सुबह किसीने [illegible] ही कि मुलाक़ात-रूममें बैठकर कोई शख़्स मेरा इन्तज़ार क रहा है। मैं घबरायी। खुदा ख़ैर करे, आज सुबह से ही किसने धरना दिया है। वहां जाने पर देखा, इन्तज़ार करने वाले शख़्स मेरे अब्बा जान थे। उन्हें एकाएक कलकत्तामें और सवेरे-सवेरे अपने होस्टलमें देखकर मेरे फ़रिश्ते कूच कर गये। देखनेके साथ ही हज़ार तरहके ख़यालात माथेमें चक्कर काटने लगे।

"नर्गिस !"

"अब्बा,"

"मुझे इस तरह एकाएक अपने सामने देखकर तू तअज्जुबमें आ गयी होगी ? क्यों ?"

मैं चुप रही।

"मैं," अब्बा बोले "तुझे लखनऊ ले जानेके

लिये आया हूं। आजही दोपहरकी गाड़ीसे चलना होगा।"

मेरे चेहरेपर हवाइयां उड़ने लगीं, छाती धड़कने लगी, आंखोंके सामने अन्धेरा-सा दिखायी पड़ने लगा। क्या अब्बासे भाभीने सारी बात बता दीं? ज़रूर ऐसा ही हुआ होगा। नहीं तो ये इस तरह कलकत्ता कभी न आते। अब इनसे कैसे बात करूँ? क्या कहूं, क्या न कहूं? अब्बाकी ग़ैर-हाज़िरीमें मैं अपने दिलको जितना मज़बूत समझती थी उनका सामना होते ही वह सब मज़बूती काफ़ूर हो गयी। थोड़ी देरके लिये मेरी दुनियामें केवल दो आदमी रह गये। एक, गुस्सावर, संग-दिल और ज़बरदस्त अब्बा और दूसरी 'उनकी सूरत और आंखोंसे कांपनेवाली' मैं। मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि मैं बेहोश होकर गिर पड़ूँगी। मगर, उसी वक़्त तुम्हारी हँसती हुई तस्वीर मेरी आंखोंके सामने फिर गयी। मैं संभल गयी। मुझे मालूम पड़ने लगा कि तुम्हारी मुस्कराहटके सामने अकेले अब्बा

चन्द हसीनोंके .खुतूत

तो क्या सारी ख़ुदाई का ग़ुस्सा भी कोई चीज़ नहीं।

अब्बाने कहा—"चुप क्यों खड़ी हो चलनेकी तैयारी करो। मैं अभी तुम्हारी वार्डेनसे भी बातें करता हूं। अब तुम्हारी पढ़ाई ख़त्म हो गयी।"

"क्यों?" मैंने पूछा।

"यों हीं। मैं यही मुनासिब समझता हूं।"

मैंने अपने जिस्मकी तमाम ताक़त ज़बानमें एकट्ठी कर उनसे कहा—

"अब्बा, मैं तो अभी पढ़ूंगी।"

"अच्छी बात है, पढ़ना। मगर कलकत्तामें नहीं घरपर। किसी मेमको ठीक कर दूँगा।"

मैंने कहा—"मैं यहीं रहकर पढ़ना चाहती हूं।"

अब्बाने कड़ी आवाज़से जवाब दिया—"अब यह ग़ैरमुमकिन है। मैं इस बातपर ज्यादा बहस नहीं करना चाहता मगर, यह कहे देता हूं कि मुझे तुम्हारी रत्ती-रत्तीकी खबर है। मेरी बातोंका मतलब अगर और साफ़ समझना हो तो लो—देखो।"

अब्बाने एक लिफ़ाफ़ा मेरे सामने फेंका।

उसमेंका ख़त निकालकर मैंने पढ़ा। वह याकूबका लिखा हुआ था। उस शैतानने 'हमारी बातों' में ख़ूब नमक-मिर्च लगाकर मेरे अब्बाको लिखा था कि, अगर आप जल्दही कोई तरकीब नहीं सोचेंगे तो आपकी बड़ी बदनामी होगी। और आपकी लड़की एक काफ़िरके साथ निकल जायगी।

"खतकी बातें ग़लत हैं ?" अब्बाने जवाब माँगा।

मैंने भी मज़बूतीसे जवाब दिया—"नहीं,"

"इसी लिये मैं तुम्हें यहांसे घर ले जानेको आया हूं।"

"माफ़ करना अब्बा" मैंने कहा—"इसी लिये मैं यहाँसे घर नहीं जाना चाहती, नहीं जाऊँगी। मैंने तय कर लिया है ?"

"क्या तय कर लिया है ?" गरज कर अब्बाने पूछा।

"यही कि मैं उन्हींसे......।"

"बे-शर्म, बेवक़ूफ़ ! तूने मेरे ख़ान्दानमें धब्बा लगाया है।"

चन्द हसीनोंके खुतूत

एक वार हमारे यहाँ ज़रूर जाते हैं। सूफ़ी साहवके हज़ारों मुरीद हैं। उनकी आमदनी भी कई हज़ार सालानाकी है। मगर उनकी आमदनीका एक-एक पैसा ग़रीव और मुफ़लिस, यतीम और बेवाके पेटमें जाता है। वे यहाँ ज़करिया स्ट्रीटके··· नम्बरके मकानमें रहते हैं।

जिस वक्त टैक्सी उनके दरवाज़े पर पहुंची, उनके घरमें क़व्वाली हो रही थी। कई मुसलमान ताली बजा-बजा कर गा रहे थे। बाहरसे ही साफ़ मालूम पड़ता था कि पहले सूफ़ी साहब अकेले गाते थे; बादको बाकी लोग एक साथ। टैक्सीसे उतर कर हम मकानमें घुसे। मगर थोड़ी ही दूर चलने पर मैंने अब्बा को रोका—

"थोड़ी देर ठहर जाइये, यह क़व्वाली ख़त्म हो ले तब चलियेगा। नहीं तो सूफ़ी साहब की मस्ती का तार टूट जायगा।"

अब्बा घरके भीतरी बरामदेमें रुक गये। गाने वालोंका गाना चलता रहा—

बुतमें भी तेरा या रब,
जल्वा नज़र आता है,
बुत-ख़ानेके पर्देमें
काबा नज़र आता है।

ओहो हो ! कैसे मौकेसे हम लोग पहुंचे थे। कैसा मौकेका गाना था। पहला शेर सुनते ही मैंने अब्बासे कहा—

"अब्बा,सुनते हैं ?"

अब्बा दाढ़ीपर हाथ फेर कर 'सीरियस' हो गये। गाने वाले आगे बढ़े—

दिल और कहीं ले चल
ये दैरो-हरम छूटें,
इन दोनों मकानोंमें
झगड़ा नज़र आता है।

मेरी आँखें भर आयीं, गला भर आया। ऐसी लकीरोंका लिखनेवाला शायर था या खुदा ? मैंने फिर अब्बाकी ओर देखा। मगर उनकी आखें बन्द थीं। वे खम्भेसे टिके हुए न जाने क्या सोच रहे थे।

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

माशूक़का रुतबा तो
महशरमें कोई देखे,
अल्लाह भी मजनूँको
लैला नज़र आता है।
इक क़तरए-मै जब से
साक़ीने पिलाया है,
उस रोज़से हर क़तरा
दरिया नज़र आता है।

"अब्बा!"

"चुप रहो!—चुप रहो!!"

साक़ीकी मुहब्बत में
दिल साफ़ हुआ इतना,
जब सरको झुकाता हूँ
शीशा नज़र आता है।
बुतख़ानेके पर्देमें काबा नज़र आता है।

गाना ख़त्म हो जानेके बाद मेरे सर पर हाथ फेरते हुए अब्बाने कहा—

"नर्गिस, तू ठीक कहती है। मेरा दिल कह रहा है, तू ठीक कहती है। मैं अब तक उसे और तुझे

धोका देने और दुनियाको खुश करनेकी कोशिश कर रहा था। मगर, इस वक़्त इस क़व्वालीके बहाने अल्लाहने मेरे मुंह पर थप्पड़ मारा है। बेशक—इन दोनों मकानोंमें झगड़ा नज़र आता है। बेशक, बेशक! मेरे बाल पक गये, मेरी आंखें कमज़ोर हो गयीं, मैं चन्द दिनोंका मिहमान इस सचाईको क्यों छिपाऊँ?"

"अब्बा, अब्बा!" मैं उनके क़दमोंपर गिर पड़ी—"मेरे अब्बा, मेरे अच्छे अब्बा!"

"तू न रो—तू न रो बेटी! रोना मुझे चाहिये—रोना मुझे चाहिये। ग़लत रास्तेपर मैं था, मैं हूं। मैं आजसे नहीं तेरी पैदाइशके पहलेसे ही यही सोच रहा हूं कि, 'बुतख़ानेके पर्देमें काबा नज़र आता है।' इसमें तेरा कोई कुसूर नहीं। तू मेरे दिलकी तस्वीर ही तो है? इसमें तेरा कोई कुसूर नहीं।"

उसी वक़्त सूफ़ी साहबके पीछे १५-२० आदमियोंकी भीड़ मकानसे बाहर आती दिखायी पड़ी। उन आदमियोंमें 'याकूबका बच्चा' भी था। उसकी ओर नफ़रतसे इशारा कर मैंने अब्बासे कहा—

चन्द हसीनोंके .खुतूत

"अब्बा यही वह साहब हैं जिनका ख़त सुबह आपने मुझे दिखाया था।"

याकूबने अब्बाको सलाम किया।

उसे दोआ देकर हाथ मिलाते हुए अब्बाने कहा—

"भाई, मैं तुम्हारे अहसानोंके बोझसे दबा हूं। तुमने यहां बुलाकर मेरी आखें खोल दीं। अब मुझे पूरा एतबार हो गया कि 'बुतख़ानेके पर्देमें काबा नज़र आता है।"

उस याकूबकी समझमें कुछ भी न आया। वह भौचक्कसा होकर अब्बाका संजीदा और मेरा खुश चेहरा देखने लगा।

उफ़, माइ डीयर डीयर! ख़त बेतरह लंबा हुआ जा रहा है। बारह बजे रातसे लिखने बैठी हूं, और ताक़में रखी हुई सूफ़ी साहबकी 'टाइमपीस,' पौने चारकी ओर इशारा कर रही है। इस वक़् भी मेरी आखोंमें तुम्हीं हो, इसमें कोई शक नहीं; मगर तुम्हारी मस्ती नींदसे भी बढ़ी हुई है। सुबह १०

बजेसे ही अब्बा और सूफ़ी साहब एक कोठरीमें बन्द होकर क्या जाने क्या-क्या मशवरा कर रहे हैं। खानेको नहीं निकले, पाख़ानेको भी नहीं निकले। कभी-कभी अब्बा जोशसे चिल्लाकर बातें कर रहे हैं और कभी-कभी सूफ़ी साहब। मगर, घबरानेकी कोई बात नहीं। आसार अच्छे नज़र आ रहे हैं। मिहरबाँ हो जायगें, ठहरो, सहर होने तो दो!

अब ख़त लिखते-लिखते नींदसे बेहोश हुई जा रही हूं। देखो, यह क्या करते हो? आखोंके आगे आकर मुस्कराने क्यों लगे? उफ़; मेरे 'देवता'! तुम कितने खूबसूरत कितने भले—कितने अच्छे—!

फूल, गुल, शम्सो क़मर सारे थे,
पर हमें इनमें तुम्हीं भाये बहुत।

३ अप्रैल १९२६
१० बजे दिन।

९ बजे नींद खुली! उस वक्त देखा अब्बा और सूफ़ी साहब दोनों ही मेरे ऊपर बड़े मिहरबान थे। अब्बा तुम्हें देखना चाहते हैं। सुना? समझे? मेरे

चन्द हसीनोंके खुतूत

राजा! आह! मेरे दिलसे खुशीका फ़व्वारा छूटना चाहता है। तुम कहाँ हो?

४ बजे दिन।

न आना! न आना, प्यारे! इस वक़् तो इस मुहल्लेमें आग सी लगी हुई है। सुना है शहरमें कहीं दंगा हो गया है। आर्यसमाजियोंके जुलूस पर मुसलमानोंने हमला किया है। यह मुहल्ला मुसलमानोंसे भरा हुआ है। सभी कट्टर, हज़ारों खूंख्वार और सैकड़ों बदमाश। छुरे और गंडासे, भुजाली और तलवारोंकी पुकार मची हुई है। मालूम पड़ता है भारी दङ्गा होने वाला है। मैं कहती हूं न, आग लगी है!

इस तूफ़ानमें तुम इधर न आना, मेरे दिल! न आना—न आना—न आना—न आना—!

तुम्हारी

नर्गिस+मुरारी

P. S. न आना—न आना—न आना!

(६)

(पता—)

श्रीमती सुमित्रा देवी,

C/o पण्डित जयकृष्ण शर्मा,

दारागञ्ज, प्रयाग।

Allahabad

;य छोड़ दें। चाहे:इस
भलेही शराब-कबाब,
त् ही चलते हों मगर
का नज़ारा है। पान-
कलकत्ते सभी दूकानें बन्द
ने 'घरोंमें ताले पड़े

माँ,
लेख रहा हूं। तुम्हारे
चरणोंमें सस्नेह, स-भक्ति, सादर। इसमें भी सन्देह है।
अभी गत ३ सरी अप्रैलको लेवरी' होती है और
सेवामें भेजा था। वह तुम्हें ि मुसलमान डाकियेमें
और, बहुत संभव है उस पत्रव हुंचानेका भार लेकर
साथ; अपने एक मात्र पुत्रको 'वि गुप्त और सांघातिक
नेके लिये तुम कलकत्ता आती भी निकलना मुश्किल :हो
कलकत्ता चले आनेका एक क थी अप्रैलसे ही बन्द
सकता है। याने, यहाँके दंगेक गुण्डे लगातार हमारे
मगर देखो माँ, इस पत्रमें मैं जो । दंगेके पहले होस्टल-
उसके अक्षर-अक्षरपर विश्वास व नौकरोंकी सम्मिलित

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

संख्या १३५ थी। सौ हिन्दू तथा पच्चीस मुसलमान विद्यार्थी और दस सब तरहके नौकर; जिनमें, दो मुसलमान भी थे। मुसलमानोंके पहले धावेके वक्त ही मौक़ा पाकर सबके सब मुसलमान विद्यार्थी और एक मुसलमान नौकर; मय अपने सामानके होस्टल-के बाहर न जाने कहाँ चले गये। बस एक बुड्ढे और नेक, ख़ुदासे डरनेवाले और शरीफ़ मुसलमान-ने, इस घोर संकटकालमें भी हमारा साथ नहीं छोड़ा। वही इस होस्टलका पन्द्रह बरस पुराना मुसलमान बावर्ची है। जब होस्टल छोड़कर जाने-वाले मुसलमान लड़कोंने उससे भी चलनेको कहा तो उसने गम्भीरवदन होकर उत्तर दिया कि—"ना बाबा, यह मुझसे नहीं होनेका। पन्द्रह-बरससे जिन-का नमक खा रहा हूं उन्हें ऐसी मुसीबतमें छोड़कर मैं यहाँसे बहिश्तमें भी नहीं जाऊंगा। यह तो बेव-कूफोंकी लड़ाई है। ये आज नहीं तो कल सही झख-मारकर आपसमें मिलनेकी कोशिश करेंगे। झख मारकर भैया, मेरी बातें याद रखना कि कोई

बेवकूफ़ कभी कुछ कह रहा था। फिर ऐसे लोगोंका साथ देकर मैं अपने दिल और ख़ुदाको क्यों नाराज़ करू ?" जाने वालोंने कहा—"मुसलमानोंने इस होस्टलमें आग लगाने और इसमें रहने वालोंको क़त्ल करनेका इरादा किया है। मुमकिन है यहाँ रुकनेमें तुम्हें अपनी जान भी खोनी पड़े।" उसने दृढ़तासे मुस्कराकर जवाब दिया—"अरे भैया, जहाँ इतने आदमी हैं वहाँ कोई डर नहीं। इतने लोगोंके साथ मरनेमें भी मज़ा मिलेगा।" माँ, इसी शरीफ़ मुसलमानने मेरे ऊपर कृपा कर यह वादा किया है कि यह चिट्ठी किसी-न-किसी तरह बच-बचाकर हवड़ा स्टेशनके डाक-ख़ानेमें छोड़ आवेगा। इसीकी कृपाके बलपर यह पत्र लिख रहा हूं। मेरा 'कमरा' सड़क और होस्टल-गेटके ठीक सामने तिमंजिले पर है। मैं खिड़कीके पास एक कुर्सीपर बैठा हूं और सामने एक स्टूल रखकर उसीसे मेज़का काम ले रहा हूं। मेरे चारों ओर ईंटें, पत्थरके टुकड़े, लकड़ियाँ और छोटे-बड़े कई लोहेके टुकड़े

चन्द हसीनोंके .खुतूत

रखे हुए हैं। यह इस लिये कि अगर एकाएक मुसलमानोंका दल चढ़ आये तो उनका इन्हींसे स्वागत किया जाय। होस्टल-भण्डारकी भोजन-सामग्री तीसरी अप्रैलकी शामसेही समाप्त होगयी है। मैंने पहले पत्रमें तुम्हें लिखा है कि, इधर ३०-३५ दिनों तक मैं बुरी तरह बीमार था। अब इसी कमज़ोरीकी हालतमें तीन दिनोंसे उपवास भी कर रहा हूं। हम लोगोंके पास लकड़ी, ईंट, मेज़, कुर्सी, बर्त्तन, कपड़े, कागज और किताबोंको छोड़ ऐसी कोई भी चीज़ नहीं जिसे हम खा सकें। हमारे तीन ओर मुसलमानोंकी बस्ती है और एक ओर हिन्दुओं की। हमने टेलीफ़ोन से पुलीस और हिन्दुओंसे सहायता भी मांगी है। दोनों ही ओरसे सहायता देनेकी आवाज़ भी आयी है मगर, फिर भी हम तीन दिनोंसे उपवास कर रहे हैं। हिन्दू तो इधर, मेरा ख़याल है आही नहीं सकते, क्योंकि इस ओर मुसलमान उनसे कहीं ज़बरदस्त हैं। रही पुलीस। उसने आज सुबह एक बार, होस्टल-गेट पर खड़े होकर

हुरदंग मचाने, ईंटें फेंकने, गाली बकने और 'बाहर निकलो साले तो देखूँ !' की आवाज़ लगाने वालों-को एक ओर खदेड़ा भी था मगर, व्यर्थ। पुलीसके हटते ही दूसरी ओरसे अल्लाहके अन्धे-बन्दोंकी दूसरी टोली हमारे सिरपर सवार हो गयी।

हम, याने हम हिन्दू लोग, बड़े विचित्र हैं माँ। दूनकी लेना और चौगून की हाँकना बहुत जानते हैं। मगर, जब असली वक्त सामने आता है तब अगल-बगल झाँकने, सर खुजलाने और खाँसने-खूंसने लगते हैं। हमारी जगह पर अगर सौ मुसल-मान, अंगरेज़ या सिख होते तो कभी भी ऐसी ज़िल्लतमें रहना मंजूर न करते। फिर, चाहे उनमेंसे दस-बीस या पचीस समाप्त ही क्यों न हो जाते। मगर, जो जीते रहते वह शानसे जीते रहते। हम सौ हैं। नौकरोंको मिलाकर हमारी तादाद एक सौ नौ है। हमारे पास सैकड़ों कुर्सियाँ, बीसों छुरे और अनेक डण्डे हैं। अगर हम सब एक बार हिम्मत करके मुसलमनोंका सामना करें तो एकाएक

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

हमारा हारना और अपमानित होना मुश्किल हो जाय। मगर वह हिम्मत हममें नहीं। यहाँ तो कोई बीवीका नाम लेकर कलप रहा है और कोई मांको याद कर औरतोंकी तरह आँसू टपका रहा है। कुत्तोंकी तरह जान देनेको सभी राज़ी हैं, शेरोंकी तरह मरनेको कोई तैयार नहीं। यह हमारी ही नहीं वर्त्तमान हिन्दू जातिकी भयानक कमज़ोरी है। और, इस कमज़ोरी का ही हमारे मुसलमान दोस्त फ़ायदा उठाते हैं। हम देवता-देवता चिल्लाते हैं मगर जब वे लोग हमारे देवताके रथ पर धावा करते हैं, तब हमारा देवता-प्रेम काफ़ूर हो जाता है। हम देवता को, अपनी नज़रोंमें, विजातियों और विधर्मियोंके मुखका थूक पीने, जूते खाने और कुचले जानेके लिये छोड़ अपने अनमोल प्राणों को लेकर भाग खड़े होते हैं। हम बाजा-बाजा चिल्लाते हैं मगर सरकार या मुसलमानों की एक चपत सर पर बैठते ही हमारी चिल्लाहट मन्द पड़ जाती है। हम अपनी बात, अपने धर्म, अपने देवताके लिये प्राण दे देना नहीं जानते।

बस सारी ख़ुराफ़ातों की जड़ यही है। (संसारमें कमज़ोर होना ही पाप है। संसारके सारे पापोंके ज़िम्मेदार वे नहीं है जो अत्याचार या व्यभिचार करते हैं, बल्कि, वे हैं जो अत्याचारों और व्यभिचारोंको सहते हैं।) इस समय संसारकी सबसे बड़ी पापिनी जाति—हिन्दू-जाति है। इधर चार-पाँच सदियोंसे उसका पतन पर पतन हो रहा है। वह गिर रही है—गिर रही है—गिर रही है। विदेशी और विजातीय, अपवित्र और नरकके कीड़े सदियोंसे हमारी माताओं, बहनों, बेटियों और बहुओंका पग-पगपर अपमान करते हैं, अपहरण करते हैं, और उनपर पाशविक अत्याचार करते हैं और हम,—बड़े-बड़े मायावी नेताओंके शब्दोंमें—'जिनकी नसोंमें राम और कृष्ण और परशुराम, प्रताप और शिवा और गुरु गोविन्द, इन्द्र और वरुण और कुवेरका रक्त प्रवाहित होरहा है' इन अत्याचारोंको देखते हैं और देखते हैं। दुर्बलोंकी तरह देखते हैं, गिरे हुओंकी तरह देखते हैं, नीचोंकी तरह देखते हैं, निर्लज्जोंकी तरह देखते

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

हैं, कायरोंकी तरह देखते हैं, नामर्दोंकी तरह देखते हैं।

ठहरो! देखो, फिर हल्ला मच रहा है, शायद वे फिर धावा करने आ रहे हैं। आह! बड़ी कमज़ोरी मालूम पड़ रही है, अभी बहुत कुछ लिखना और कहना-सुनना है। माँ! कौन जाने इस हाय-हायमें दूसरा पत्र लिखनेके लिये जीता रहूँगा या नहीं।

अभीको सब गये हैं। दो-तीन सौ से कम नहीं थे। इस बार एक नयी और मार्के की बात हुई है। इस दलका नेता वही था जिसका परिचय मैंने अपने पहले पत्रमें तुम्हें दिया था। उसका नाम याकूब है। मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि वह हमारे कालेज का बी० ए० का विद्यार्थी है। मैंने यह भी लिखा है कि वह भी उस मुसलमान कन्याको पसन्द करता है। दो-एक बार उसने नर्गिससे पत्र-व्यवहार करनेके लिये इशारे-इशारे मुझे सचेत भी किया था। एक बार तो हँसते-हँसते साफ़ कह बैठा था कि देखिये जनाब, आपकी यह मुहब्बत मज़-

हबी जामा पहन लेने पर ख़तरनाक भी हो सकती है। उस वक़्त मैंने, दिलमें कुछ विचलित होकर भी, उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। मगर आज तो वह बड़ा भयानक रूप धारण कर आया था। हाथमें तलवार लिये, लुङ्गी लगाये और दो-तीन सौ धर्मान्धों और आवारे-बदमाशोंको साथ लिये होस्टलके फाटक पर आकर उसने पहले आवाज़ दी—

"मुरारी कृष्ण! अजी ऐ पर्देमें रहनेवाले आशिक! ज़रा घूँघटके बाहर भी मुँह निकालो!"

मैंने खिड़कीके शीशेसे बाहर झाँककर उसे देखा। आख़िर हमारा साथी था, सहपाठी था। बड़ा ढाढ़स हुआ। मैंने पुकारा—

"भाई याकूब, यह सब क्या हो रहा है? वह देखो! उन्हें रोकते क्यों नहीं? इस तरह पत्थर और सोडावाटरके बोतल फेंके जायंगे तो मैं तुमसे कैसे बातें करूंगा!"

उसने कहा—"आज तुझसे नहीं तेरी जानसे बातें होंगी। तू 'कावर्ड' बिलके बाहर निकलता ही

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

नहीं। तू काफ़िर है, तेरी माँने ऐसा दिलेर-दूध ही नहीं पिलाया होगा जैसा हम मुसल्मानों की माएं पिलाती हैं। सुन! अब मैं ज़बरदस्ती कल तेरी माशूका नर्गिसको उसके डेरे परसे उठा लेजाऊंगा। इस वक़्त मेरे साथ सैकड़ों क्या हज़ारों आदमी हैं। किसी मसजिदमें लेजाकर कल ज़बरदस्ती उसे अपनी बीबी या बाँदी बनाऊंगा। चूमूंगा-लिपटाऊंगा.........।

"ठहर! वह...काफ़िर लोग उस गलीसे आ रहे हैं। मैं इस वक़्त उनका सामना नहीं करना चाहता। हट जाता हूं! और, देख। ले। यह ख़त तुझे दे जाता हूं। यह उसी इसलामको बदनाम करनेवाली बदमाश छोकरीका लिखा हुआ है। उसने इसे तेरे पास भेजा था मगर मैंने अपनी जासूसीसे रास्तेमें ही हथिया लिया। उसका बाप भी इस वक़्त पागल होकर अपनी लड़की की 'पट्टी' से पढ़ रहा है। मगर कोई हर्ज नहीं। मैं कल सब ठीक कर दूंगा।"

"तुझे आगाह करने आया हूं। बताने आया हूं। मैं कल उसे अपने कब्ज़ेमें करूंगा जिसे तू अपनी बीबी समझना चाहता है। हो सके तो सामने आना और उसके होठों को मेरे होठों की रगड़से, उसके सीने को मेरे सीनेके दबावसे बचाना !"

इतना कह कर अपने दलके साथ वह आगे बढ़ गया और एक खुला लिफ़ाफ़ा होस्टलके बन्द फाटकके भीतर फेंकता गया। उसके पीछे ही, हमारे भाग्यसे, हिन्दुओं का भारी दल आया है। उसके नेता हमारी हालत सुन और देख कर व्यग्र हो रहे हैं और हमसे कह रहे हैं कि इस मकान को छोड़ कर हम उनके साथ सुरक्षित स्थानमें चले चलें। हमारे साथी तैयार हो रहे हैं और मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूं। माँ ! याकूबके फेंके हुए लिफ़ाफ़को मंगा कर मैंने पढ़ा। वह उन्हींका पत्र है जिनके बारेमें इसके पहलेवाले पत्रमें मैंने हृदय खोल कर तुम्हें रत्ती-रत्ती बता दिया है। वह मेरी पत्नी हो चुकी हैं, मैं उनका पति हो चुका हूं। इस समय

चन्द हसीनोंके .खुतूत

नहीं। तू काफ़िर है, तेरी माँने ऐसा दिलेर-दूध ही नहीं पिलाया होगा जैसा हम मुसल्मानों की माएं पिलाती हैं। सुन! अब मैं ज़बरदस्ती कल तेरी माशूका नर्गिसको उसके डेरे परसे उठा लेजाऊंगा। इस वक़्त मेरे साथ सैकड़ों क्या हजारों आदमी हैं। किसी मसजिदमें लेजाकर कल ज़बरदस्ती उसे अपनी बीबी या बाँदी बनाऊंगा। चूमूंगा-लिपटाऊंगा········।

"ठहर! वह···काफ़िर लोग उस गलीसे आ रहे हैं। मैं इस वक़्त उनका सामना नहीं करना चाहता। हट जाता हूं! और, देख। ले। यह ख़त तुझे दे जाता हूं। यह उसी इसलामको बदनाम करनेवाली बदमाश छोकरीका लिखा हुआ है। उसने इसे तेरे पास भेजा था मगर मैंने अपनी जासूसीसे रास्तेमें ही हथिया लिया। उसका बाप भी इस वक़्त पागल होकर अपनी लड़की की 'पट्टी' से पढ़ रहा है। मगर कोई हर्ज नहीं। मैं कल सब ठीक कर दूंगा।"

"तुझे आगाह करने आया हूं। बताने आया हूं। मैं कल उसे अपने कब्ज़ेमें करूंगा जिसे तू अपनी बीबी समझना चाहता है। हो सके तो साम्ने आना और उसके होठों को मेरे होठों की रगड़से, उसके सीने को मेरे सीनेके दबावसे बचाना!"

इतना कह कर अपने दलके साथ वह आगे बढ़ गया और एक खुला लिफ़ाफ़ा होस्टलके बन्द फाटकके भीतर फेंकता गया। उसके पीछे ही, हमारे भाग्यसे, हिन्दुओं का भारी दल आया है। उसके नेता हमारी हालत सुन और देख कर व्यग्र हो रहे हैं और हमसे कह रहे हैं कि इस मकान को छोड़ कर हम उनके साथ सुरक्षित स्थानमें चले चलें। हमारे साथी तैयार हो रहे हैं और मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूं। माँ! याकूबके फेंके हुए लिफ़ाफ़को मंगा कर मैंने पढ़ा। वह उन्हींका पत्र है जिनके बारेमें इसके पहलेवाले पत्रमें मैंने हृदय खोल कर तुम्हें रत्ती-रत्ती बता दिया है। वह मेरी पत्नी हो चुकी हैं, मैं उनका पति हो चुका हूं। इस समय

चन्द हसीनोंके .खुतूत

सचमुच याक़ूब उनका अपमान कर सकता है। मुसलमान उत्तेजित होने पर जो कुछ न कर डाले थोड़ा है।

सामने मुसलमान बावर्ची खड़ा होकर पत्र जल्द ख़तम करनेका आग्रह कर रहा है। आधेसे ज्यादा विद्यार्थी अपना बोरा-बिस्तर सँभाल कर फाटक पर खड़े हिन्दू-दलमें जा मिले हैं। अब मैं भी पत्र समाप्त कर इस मकानके बाहर जाता हूं।

मगर—माँ! मैं कल ज़करिया-स्ट्रीट ज़रूर जाऊंगा। उसने तुम्हारे दूधका ताना दिया है; हिन्दूजातिको ललकारा है और एक हिन्दूकी हृदय-प्रतिमाको भ्रष्ट करनेकी धमकी दी है। प्राण देकर भी मैं याक़ूबके सामने डटा रहूंगा। माँ! यह तुम्हारे दूध का सवाल है और धर्मका सवाल है। मेरे मानका सवाल है और मनुष्यताका सवाल है। यहाँ झुकना ठीक न होगा। ऐसी अवस्थामें मर जाने पर भी मैं तुम्हारा मुख उज्वल और तुम्हारा हृदय गद्गद कर दूंगा।

रोना मत, घबराना मत, और यहाँ आना भी मत! ऐसा मत समझ बैठना कि मैं मर ही जाऊंगा। मरना खेलवाड़ नहीं। ज़रा शान्ति होते ही पत्र लिखूंगा—तार दूंगा।

इस समय बस—

तुम्हारा

छोटे

(पता—)

श्रीमान [illegible]

[illegible]

बड़ाबाजार

कलकत्ता

८-२-१९२६,

सम्पादकजी,

गत कलसे ही कलकत्ता आ गया हूं। मेरे कान-र छोड़नेके पहले आपने जो आग्रह किया था वह झे भूला नहीं है। आपने कहा था कि—"वहाँ हुंचते ही जहाँ तक संभव हो जल्द कलकत्ताके गेकी विस्तृत और सच-सच ख़बर भेजना।" उसी समय मैंने आपसे निवेदन कर दिया था कि मैं तो पने एक बड़े सुन्दर और सजीले, मस्त और छबीले मेत्रसे, कई वर्षों बाद, मुलाकात करने जा रहा हूं। और, जा रहा हूं 'नाइनटी-नाइन पर-सेन्ट' एक अद्वितीय राष्ट्रीय कार्य करने। याने, एक हिन्दू

चन्द हसीनोंके खुतूत

युवक और ब्राह्मण, मित्र और बन्धु, प्रियतम और अभिन्नको यह सलाह देने कि—यदि आत्मा कहता हो, यदि भीतरकी पवित्र-ध्वनि स्वीकृति देती हो, तो, वह उस 'यवनी नवनीत कोमलाङ्गी' से व्याह कर लें जिसकी खूबसूरत तस्वीर उनकी आखोंमें दिन और रात और रात और दिन, टंगी रहती है! आप मेरी बात सुनकर, चश्मा साफ़ करते-करते, बड़े ज़ोरसे हंस पड़े थे—"गोविन्दजी, आप भी बैठे-बैठे एक-न-एक ख्वाब हमेशा ही देखा करते हैं। इस तरहका उथल-पुथल-कारी हिन्दू-मुसलिम-एका! आपके वह मित्र कहांके रहने वाले हैं? उनकी जाति क्या है?" मैंने कहा था—"वह प्रयागके एक प्रसिद्ध ब्राह्मण रईसके पुत्र हैं।" "तब तो हो चुका! तब तो हो चुका!" आपने उत्तर दिया था—"यह आसमाँ ज़मीसे मिलाया न जायगा।" मैंने कहा था—"मुझे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं मालूम पड़ती। स्त्रियाँ तो रत्नोंकी तरह सदा पवित्र हैं। किसी भी जातिकी स्त्रीको, किसी भी जातिके पुरुषको; मन मिलनेपर

प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कर लेना चाहिये। यही हम आर्य्योंका सनातन-धर्म है। यदि इस विषय पर अधिक बहस कीजियेगा तो मैं प्रमाणमें पुराणोंको पेश करूंगा, जिनमें ऐसी अनेक कथाएँ हैं जिनसे यह साबित होता है कि उस समयके आर्य्यकुमार या नरेश, इच्छा होते ही, किसी भी जातिकी स्त्रीको सहर्ष ग्रहण कर लेते थे। महाभारतके धनुर्धर और गदाधरोंने तो नाग और राक्षस-कन्याओंको भी नहीं छोड़ा था। उनको भी जाने दीजिये, अभी कलकी बात है, संस्कृत भाषाके प्रचण्ड-विद्वान, महाकवि पण्डितराज जगन्नाथने छाती ठोंककर एक मुसलमानिनको अपनी अङ्कशायिनी बनाया था। उनको भी जाने दीजिये, वर्त्तमान हिन्दू समाजको ही लीजिये। धर्म-धर्म, आचार-आचार, हिन्दू-हिन्दू और मुसलमान-मुसलमान कौन चिल्लाता है? केवल दरिद्र और केवल मूर्ख। जिनके पास पैसे हैं, जिन्होंने भगवती शारदाको अपनी चेरी बना रखा है, जो बली हैं, उनसे कोई कुछ नहीं पूछता। फलाँ जगहके

चन्द हसीनोंके खुतूत

महाराज दिन भर शराब ही पीकर जीते हैं। जल उन्हें पचता ही नहीं, अतः चाँदीकी पवित्र कटोरीमें शुद्ध-विलायतकी ह्विस्की ढाला करते हैं। इतना ही नहीं वे पञ्च 'म'-कारी भी हैं। अपनी रियासती बहू और बेटियोंको आये दिन एक-न-एक ढोंग और एक-न-एक धर्मकी आड़में छिपाकर नष्ट किया करते हैं। हज़ारों उनकी उप-पत्नियाँ या रण्डियाँ हैं। कई सौ हिन्दू, सैकड़ों मुसलमान और पचासों गोरी-बीबियाँ। इतना सब होते हुए भी वे हमारे व्यवस्थापकोंकी दृष्टिमें द्विजराज और सना-तनधर्मके सिरताज हैं। बड़ी-बड़ी, पुराण-रक्षिणी-सनातन-धर्म सभाओंके सभापति हैं—क्या हैं—क्या हैं। वही क्यों! समाजमें जिसके पास पैसा है वही, खुले आम मुसलमान-वेश्याओंको रखता है और फिर भी समाज इसे क्षमा करता है। क्षमाही नहीं, पैसेवाले दुराचारी वेश्यागामियोंकी ओर आकांक्षा और लालसा-मयी दृष्टिसे देखता भी है। फिर महाराज! बताइये, यह आसमां ज़मींसे क्यों

न मिलता जायगा ! यदि मुसलमान भाइयोंके 'प्रिंस' के स्वागत-समारोह [illegible] और नष्ट कर दी जाती तो, मुसलमान भाइयोंके प्रेमपत्र कैसे नष्ट हो जाता !" मेरी बातें सुन आपने कहा था "अच्छा भाई, क्योंकि मुझे इस मामलेमें आप क्यों फंसा रहे हैं ? पहले यहाँ आकर अपने मित्रों और [illegible] परिस्थितियोंको देखिये-समझिये भी। तब मेरी बात न भूलियेगा। आदि समाचारोंका [illegible] दिया। मुझे कोई विशेष आपत्ति नहीं। आपने [illegible] इस घट-नाओंको [illegible] मनोरञ्जनार्थ एक सुन्दर समाचार लिख जायगा— हा हा हा हा !"

महाराजजी, आप हमें [illegible] और सोचते होंगे कि "क्या बेवकूफ़ मेरी ही बातोंको [illegible] मुझसे मेरे पास लिखकर क्यों भेज रहा है ? मैंने तो इससे [illegible] समाचार लिखकर भेजनेको कहा था।" सचमुच मैं इस समय किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा हूं—बे-वकूफ़ बना बैठा हूं। कानपूरजी, अपनी

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

और आपकी बातोंको एक बार पुनः लिखनेका अभिप्राय यही है कि आपको एक बार पुनः याद पड़ जाय कि मैं यहाँ किस प्रेम-मय व्यापारके लिये आया था। मगर, अफसोस! यहाँ आनेपर सारे मंसूबोंपर पानी फिर गया। इस समय मुझे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखायी पड़ता है। अस्तु मैं यह पत्र लिख कर आपसे प्रार्थना करता हूं कि, आप मुझे क्षमा करें। मैं अवकाश और सहूलियत होते हुए भी आपके पत्रके लिये यहाँके घटनाओंकी रिपोर्ट नहीं भेज सकता। मेरा माथा काबूमें नहीं है। मेरे होश ठिकाने नहीं हैं।

इसका कारण बताने के लिये मुझे आपके सामने अपनी, कलकत्ताकी, डेढ़ दिनोंकी दिनचर्य्या रखनी होगी।

७ अप्रेल को प्रातः ६॥ बजे हृदयमें आनन्द और, भय के अनेक भाव लेकर हवड़ा स्टेशन पर पहुंचा। आनन्द था कई वर्षों बाद अपने अभिन्न-हृदयके दर्शनोंकी आशामें, और, भय था कलकत्ताके दंगेकी

अफ़सानों में। रेलहीमें यात्रियोंको सतर्क पाया। सब फुसफुसा रहे थे कि, कलकत्ताके दंगेके कारण हिन्दू-मुसलमानोंके भाव ऐसे भयङ्कर हो गये हैं कि कलकत्ता जाने वाली गाड़ियोंमें भी खून और हत्या हो जाती है! मैंने खुद नहीं देखा मगर, स्टेशनके बाहर आने पर एक गुजराती हिन्दूने मेरे कानके पास आकर कहा—"देखा नहीं, इस गाड़ीमें भी दो-तीन मुर्दे पाये गये हैं। यह तो कहो, ग़नीमत हुई, हम बच गये!" मैंने हंस कर उत्तर दिया—"भाई जी बच कैसे गये? अभी तो समूचा कलकत्ता सामने रखा है। इससे बचे तो समझिये सबसे बचे!" ख़ैर, मैंने पहले ही सोच रखा था कि ठहरूंगा बड़ाबाजार नं...में, अपने मारवाड़ी मित्रके पास, और फिर वहीं से मुरारीसे मिलनेके लिये उनके होस्टलमें जाऊंगा। यही किया भी। एक सिखकी टैक्सी पर जा बैठा और बोला—

"बड़ाबाजार पहुंचा दोगे?"

"पहुंचा तो दूंगा मगर आप हैं कौन?"

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

"हिन्दू, ब्राह्मण, आदमी।"

सिख हँसा—"चिन्ता कीजिये नहीं बाबूजी, आजकल यहाँ साले मुसलमानोंने अन्धेर मचा रखा है। वे सभीको धोखा देते हैं और सभी हिन्दुओंको नष्ट करते हैं। इसीसे हम लोग बहुत समझ-बूझकर केवल हिन्दू सवारी बैठाते हैं।"

मैंने पूछा—"रास्तेमें कोई खतरा तो नहीं है?"

उसने कहा—"इधर देखिये, हम दो भाई हैं। दोनों दो तलवारें लेकर आपके साथ मोटर पर चल रहे हैं। अगर रास्तेमें कहीं ख़तरा है तो वह पहले हमारे लिये है फिर आपके लिये! हमारे जीतेजी कोई आपकी ओर कड़ी आँखोंसे ताक भी नहीं सकता। मगर बाबूजी, चलनेके पहले हम आपकी 'चोटिया' और 'जनेऊ' देख लेंगे तब चलेंगे।"

मुझे कोई भी आपत्ति न हुई। मैंने सहर्ष अपनी लम्बी चोटी और मोटा जनेऊ उनके आगे नज़र किया। वे मुझे लेकर पों-पों करते रवाना हुए। हवड़ा-पुल पार हो जानेके बाद मुझे चार-पांच

फर्लांग और आगे जाना था। कुछ चार-पाँच मिनटका रास्ता था। मगर इतनेमें ही मैंने समझ लिया कि दंगेका कलकत्ता कैसा था। सुनसान—चुप—भयानक! मित्रोंने दो-चार जगह पटरियों पर रक्त चिह्न दिखाये· यहां छूरे चले थे बाबू। यहाँ खून हुआ था बाबू।" मारवाड़ी मित्रके यहाँ पहुंचने पर मालूम हुआ कि अब शान्ति हो रही है। पर हफ्ते तक भयानक रक्त-लीला दिखानेके बाद अब मुसलमान गुण्डे कुछ दब से रहे हैं। मुरारी और उनके होस्टलका पता पूछने पर उक्त मारवाड़ी सज्जनने कहा—"उस होस्टलवाले तो बड़ी मुसीबतमें पड़ गये थे। उस पर मुसलमानोंने कई बार धावा किया था। उसमेंके विद्यार्थी तीन-तीन दिनों तक केवल पानी पीकर रह गये। अभी कल हमारे हिन्दू-दलने उनका वहाँसे उद्धार किया है।"

मैंने उत्सुक होकर पूछा—"वे लोग वहाँसे निकल कर कहाँ गये?"

मित्रने कहा—"कुछ लोग हवड़ा-स्टेशन, कुछ

चन्द हसीनोंके .खुतूत

लोग अपने-अपने मित्रोंके घर और कुछ लोग जहाँ जीमें आया वहाँ।"

मैंने घबरा कर पूछा—"और मुरारी? वह कहाँ गया?"

"कौन मुरारी? आप किसे पुछते हैं?"

वह मारवाड़ी सज्जन मेरे परिचित थे, मुरारीके नहीं। मुझे उनकी बातोंसे बड़ी निराशा हुई। मैं मन ही मन कुछ घबरा सा गया? सोचने लगा, अब उसे कहाँ ढूंढूं? इस समय कलकत्तामें किसीको ढूंढ़ निकलना कोई खेल तो है नहीं। मैंने घड़ी देखी। सवा आठ बजे थे।

"आपकी मोटर ख़ाली है?" मैंने मारवाड़ी मित्रसे पूछा।

"मोटर ख़ाली है, शोफ़र ख़ाली है और (अपनी ओर इशारा कर) आपका यह नौकर भी बिलकुल ख़ाली है। मगर पहले आप नहा लें, कुछ खा लें।"

नहाने-खानेको जी नहीं चाहता था मगर, शिष्टाचार और लोकाचारकी रक्षा करनी ही पड़ी। यह

सब करते-कराते पूरे बारह बज गये। यानी, सात अप्रैलका मध्याह्न हो गया। मैंने सेठसे कहा—"सेठजी अब तो मैं अपने भाईकी खोजमें ज़रूर जाना चाहता हूं। उन्होंने कहा—"खुशीसे। यह सेवक भी आपके साथ चलेगा। अरे—ओ! मोटर तैयार कराओ!" अभी सेठ कपड़े पहन ही रहे थे कि उनके एक हट्टे-कट्टे और मज़बूत सिख-जमादारने आकर कहा—"बाबूजी, अभी-अभी एक हिन्दू जवान मारा गया है!"

"कहां? कहां??" हम दोनोंने एक साथ ही और एक ही स्वरमें समाचार सुनानेवालेसे प्रश्न किया।

उसने गम्भीर होकर उत्तर दिया—

"ज़करिया स्ट्रीटमें।"

"ज़करिया स्ट्रीटमें?" सेठने कहा—"वहां कोई हिन्दू क्यों गया? कैसे गया? वह तो मुसलमानों-का अड्डा है। वह हिन्दू कौन था जी? कुछ मालूम हुआ है?"

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

"कौन था यह तो नहीं कहा जा सकता है ; हाँ, कहने वालोंने बताया है कि कोई बड़ा ही सुन्दर जवान था। उफ़ ! बाबू जी, सुना है उन बदमाशोंने उसकी बोटी-बोटी अलग कर दी।"

सम्पादकजी, मुझे नहीं मालूम था कि यह ज़करिया स्ट्रीट क्या बला है। इसके पहले मैंने उसका नाम भी नहीं सुना था। मगर, एक मुसलमानी महल्लेमें किसी 'बड़े ही सुन्दर जवान' का ख़ून सुनकर मेरा ख़ून सूख गया ! न जाने क्यों मनमें धक्...धक् होने लगा। आँखोंके सामने धुँधला दिखायी पड़ने लगा। मैंने सेठजीसे कहा—

"ज़करिया स्ट्रीट कहाँ है ?"

"थोड़ी ही दूर पर—क्यों ?"

"एक बार वहाँ जाना चाहता हूं।"

"ज़करिया-स्ट्रीट जाइयेगा ? और ऐसी हालतमें जब कि सुन रहे हैं कि अभी-अभी एक ख़ून हो गया है ?"

"हाँ."

"क्यों ?"

"नहीं कह सकता क्यों ? मगर मुझे अपने भाई को खोजना है। बस चलिये—बस। घबराइये नहीं। चलिये पुलिस स्टेशनसे कुछ सिपाहियोंको साथ ले-लिया जाय।"

बड़ाबाज़ार-पुलिस-स्टेशनके इंचार्ज को सारी कथा सुना कर उनसे पाँच सिपाहियोंको अपनी सहायताके लिये मैंने माँगा। उन्होने कहा कि—"थोड़ी देर पहले ज़करिया स्ट्रीटमें किसी हिन्दूके मारे जानेकी ख़बर हमें भी मिली है। पुलिसका एक दल उधर गया है। फिर भी आप खुशीसे पाँच सिपाहियोंको अपनो मोटरमें बैठाकर ले जायँ।" इञ्चार्ज महोदयको धन्यवाद देकर और सिपाहियोंको मोटरमें वैठा कर हम ज़करिया स्ट्रीटकी ओर चले।

ज़करिया स्ट्रीटमें घुसतेही हमारी नज़र उस दल पर पड़ी। हमारी मोटरसे तीन-चार बीघेकी दूरी पर, एक मोटर-लारी को घेरे, पन्द्रह-बीस पुलिस वाले, कई सार्जन्ट और अनेक और आदमी आ रहे थे।

९

चन्द हसीनोंके खुतूत

हमने ड्राइवरसे मोटर की चाल मन्द करनेको कहा। मेरा कण्ठ सूखने लगा, कलेजा मुहं को आने लगा। उस मोटरमें क्या हैं? कौन है? क्या उसीमें उस 'बड़े ही सुन्दर जवान' का शव लाद कर पुलीस ले जा रही है? हाँ, है तो ऐम्बुलेन्स-कार ही। अरे? सेठजी, सेठजी! वह देखिये—वह! वह सुन्दरी कौन है? वह देखिये। देखा? अपूर्व रूप है। अद्वितीय यौवन है।

उस स्त्री को देख कर मेरे मारवाड़ी मित्र भी ज़रा सकपकाये—

"पण्डितजी क्या उसे आप पहचानते हैं? उसका रूप तो ठीक आपही ऐसा है।"

"मेरे ही ऐसा रूप!! आयं!" मुझे प्रियतम मुरारीके पत्रके वे शब्द याद आ गये—"तुम्हारी-सी आखें, तुम्हारा-सा सुन्दर मुख, तुम्हारी-सी मधुर: मुस्कराहट, तुम्हारी तरह नाक, तुम्हारे-से ओठ।"—आयँ—मेरे ही ऐसा रूप!! तो क्या—तो क्या—?

मुझे भूल गया कि मैं मोटर पर बैठा था। मुझे

भूल गया कि मैं मृत्युके अखाड़े कलकत्ता और कलकत्ताके नरक ज़करिया-स्ट्रीटमें था। मुझे भूल गया कि मेरे साथ चार भले आदमी और हैं। बिना दरवाज़ा खोलेही मैं मोटरके बाहर सड़क पर कूद पड़ा। होश तब हुआ जब घुटने फूट गये! रक्त बहने लगा। मगर वह होश भी क्षणिक था। शरीर को चोट लगी थी। उसी चोटका अनुभव ही होश का रूप धर कर आया था और मुझे बता गया था कि तुम्हारे घुटने बुरी तरह फूट गये हैं। मगर, घुटनोंकी ओर कौन देखता? मुझे तो मोटरके भीतरके शवको देखना था। मुझे तो मोटरके बाहरकी सुशीला-सुन्दरीका परिचय प्राप्त करना था। मैं दौड़ा उस सामने आते हुए सरकारी जनाज़ेकी ओर। और, तब तक दौड़ता ही रहा जब तक कि उस दलके सार्जण्टोंने 'बलवाई समझ कर' मेरी ओर बन्दूकें सीधी नहीं कर लीं, और, डाटफर ललकारा नहीं कि—"ठहरो!"

"मुझे रोको मत! मुझे रोको मत!!"

चन्द हसीनोंके ख़ुतूत

दो बन्दूकें मेरी छातीके दाहने-बाएँ, मुहँ अड़ा कर अड़ गयीं। एक सार्जेण्टने फिर कड़ी आवाज़से मेरा स्वागत किया—

"किधर जाटा हाय ?"

"मैं देखूँगा—मैं फ़क़त देखूँगा।"

"क्या डेकेगा ?"

"गाड़ीके भीतर वाले को !"

इसी समय सेठजीकी मोटर भी आ गयी। सेठजीको उस दलके बहुतोंने पहचाना। उन्होंने सार्जेण्टोंको बतलाया कि मैं कौन हूं और किस उद्देश्यसे यहाँ आया हूं। मगर मुझे ये बातें पीछे मालूम हुईं। उस वक़्तका तो यही ध्यान आता है कि मैंने उन सबको धकेल कर एम्बुलेन्स-कार तक अपना रास्ता बनाया। मैं झपट कर 'कार' पर चढ़ गया। वहाँ पर एक क्षणमें, एक दृष्टिमें, देखा 'उन्हीं' के आकारका एक 'शव' कपड़ेसे ढाँक कर 'स्ट्रेचर' पर चित्त रखा था। चारों ओर रक्तका पनाला बह रहा था !

वह मुहँ कपड़ेसे ढँका था—मैंने खोल दिया।

ह मुहँ भयानक शस्त्रोंके क्रूर-आघातोंसे ढँका था। ह मुहँ रक्तकी अगणित धाराओंसे ढँका था। र्जीव होने पर भी, वह मुहँ गौरव और वीरता, सन्नता और प्रेमसे आच्छादित था। मैंने उस ुन्दर और प्रिय मुखको, हज़ार विकृत होने पर ी, फ़ौरन पहचान लिया! आह! फ़ौरन।

वह वही मुख था, जिसे जीवनके उषः-कालमें तृप्त-आखोंसे, आखें फाड़-फाड़ कर, देखा था— ेखा था—देखा था! वह वही मुख था, जिसका ामना होने पर मेरे हृदयकी सूखी से सूखी कली री हो उठती थी—खिल पड़ती थी। वह वही मुख था, जिसके दर्शन मात्रसे मेरे अन्तस्तलकी स्वर्गीय-स्वर-लहरी लहरें लेने लगती थी। वह वही मुख था, जिसकी छविके आगे मैंने एक दिन तुलसीदासके 'कोटि-मनोज लजावन हारे' की छविको भी नगण्य समझा था। वह वही मुख था, जो मेरा स्वर्ग था, अपवर्ग था, हर्ष था, आदर्श था, कल्याण था, प्राण था। वह वही मुख था—वह वही मुख था!

चन्द हसीनोंके .खुतूत

अपने हृदयके हृदय, प्राणोंके प्राणकी वह गति देख कर मुझे तो काठ मार गया ! मेरी सिट्टी गुम हो गयी। अब क्या करना और क्या न करना चाहिये इसका कुछ ज्ञान ही न रहा। हृदयमें एक साथ अनेक भावोंके भयंकर तूफ़ान उठने लगे। कभी क्रोध आता था—प्रियतमके हत्यारों पर—विक्षुब्ध-समुद्रकी तरह, खौलते हुए वड़वानलकी तरह, आग उगलते हुए ज्वालामुखीकी तरह। कभी करुणा आती थी—प्यारेकी उस अवस्था पर—विधवाके हृदयकी तरह, माँके विलापकी तरह, राम-हीन दशरथकी तरह। मैं न जाने कब तक बेहोश सा उसी एम्बुलेन्स-कारमें, प्रियतमके शवके पास घुटने टेके बैठा रहा। न रोता था और न हँसताही था ; न काँपता था और न हिलताही था।

किसीने मेरा हाथ पकड़ा—

"नीचे उतरो, थाने चलना है। हम लोग कब तक यहाँ रुके रहेंगे ? देर हो रही है।"

मैं चुपचाप—एक ठण्ढी-साँस खींचकर—नीचे

उतर आया। उस वक्त मुझे ज्ञान हुआ कि संसारमें प्रियतम मुरारीके शव, और मेरे सन्तप्त हृदयके अलावा भी कुछ चीज़े हैं। सबसे पहले मेरी दृष्टि शोक-वज्राहता नर्गिस पर पड़ी। उसकी आंखें लाल थीं, कपोल पीले और ओठ सुफ़ैद। विखरे बालों और अस्तव्यस्त वस्त्रोंवाली वह अभागिनी बिलकुल शून्य-सी खड़ी थी। मैं चुपचाप उसके सामने चला गया—

"बहन!"

एक वृढ़े मुसलमानने मेरे सामने आकर, आखोंमें आँसू भर कर, मुझसे कहा—

"बेटा, खुदाके लिये इस वक्त माफ़ करो। मेरी बदक़िस्मत बेटी इस वाक़यासे क्या जाने क्या हो गयी है। ग़जब टूट पड़ा है भैया, मेरे कमज़ोर सर पर ग़ज़ब टूट पड़ा है।"

"वह कैसे मारे गये? यही पूछते हो न!" नर्गिसने मेरी ओर देख कर कहा—"बताती हूं। अब रोते-रोते और छाती पीटते-पीटते थक गयी हूं। दिलके खज़ानेमें अब ऐसी कोई भी चीज़ नहीं बची

जिसे वह आंखों को आंसू बनानेके लिये दे। न पानी ही और न खूनही। अब बता सकती हूं। सुनो, वह मुर्दों और डरपोकोंकी तरह नहीं ; शेरोंकी तरह मारे गये। उनके पास भी छुरा था, उनके हाथमें भी डण्डा था। अगर वह दोज़ख़ी-कुत्ता, वह इसलामके मुंह परका कालिख, वह याकूब—पचासों बदमाशों के साथ न होता तो वह जल्द थोड़े ही मारे जाते। वह न जाने कबसे, और न जाने कितनी दूरसे, लड़ते और बचते मेरे दर्वाज़े तरफ आये। ज़ोरसे आवाज़ दी—"नर्गिस, मैं आगया!" उनकी आवाज़ और हो-हल्ला सुन मैंने कोठेकी खिरकी से झांक कर देखा। देखा सैकड़ों क़साई एक गाय को, सैकड़ों शैतान एक आदमीको बुरी तरह मार रहे थे। मेरे देखते-देखते उन बदमाशोंने मेरे कलेजेके टुकड़े-टुकड़े कर दिये! आह, वह नज़्ज़ारा! कभी न भूल सकूंगी, कभी न भूलूंगी।"

एकाएक नर्गिसकी त्योरियां चढ़ गयीं उसने पगलियोंकी तरह तड़प कर कहा—

"तू भी शैतान मालूम पड़ता है। तू भी मुसलमान मालूम पड़ता है। हटजा, हटजा मेरे सामने से! देखता नहीं है, मैं एक हिन्दूकी स्त्री हूं! देखता नहीं है मेरे माथेमें सिन्दूर लगा हुआ है? रक्त का सिन्दूर! उनकी छातीके ख़ून का सोहाग!! देखता नहीं है?"

प्यारे मुरारीके वियोगमें नर्गिसकी अवस्था देखकर मेरे पत्थर-प्राण पिघल गये! अबतक थमा हुआ आंसुओंका स्रोत फूट पड़ा। मैं रोने लगा—

"बहन!"

"अब रो के क्या होगा?" नर्गिसने कहा—"अब रोके क्या होगा? तुम आदमी हो? तुम आदमियोंको प्यार करते हो? तो; रोओ मत। आओ मेरे पीछे। चलो मेरे साथ। हम उस शैतानी मज़हबके काले धब्बेको ज़मीनके दामन परसे मिटादें जो आदमीका ख़ून पीना, आदमीका क़त्ल करना, सवाब समझता है। ऐसे शैतान और ऐसे नापाक मज़हबके उठ जानेपर ख़ुदा ख़ुश होगा, फ़रिश्ते

ो, आसमान फूल-फूल हो उठेगा, बरस पड़ेगा ।'

*　　　　*　　　　*

सम्पादकजी, अब अधिक लिखा नहीं जाता । नहीं, हृदय नहीं । उसी वक़्तसे, मेरा परिचय : नार्गिसने मुझे छोड़ा नहीं । वह और उसके दोनों ही मेरे मारवाड़ी-मित्रके पवित्र अतिथि हैं । —ख़ानबहादुर और धनी, बुद्धिमान और बूढ़ा— : गिड़गिड़ा रहा है कि बेटी भूल जा और घर चल । मगर, बेटी पागल है, बेहोश है । वह सलमानोंका नाश करके ही दम लेगी । इस- को मिटाकर ही घर लौटेगी । उसने पुलीससे, ट्रेटसे, पुलीस कमिश्नरसे, सबसे कह दिया —"मैं बालिग़ और पढ़ी-लिखी और समझदार मैंने ख़ूब समझकर हिन्दू-धर्म स्वीकार है । अब मैं हिन्दू हूं ।" वह मेरे साथ कानपूर, , काशी, स्वर्ग, नरक कहीं भी जाने और मुसल- संस्कृतिके विरुद्ध प्रचार करने को तैयार है । ं भी उसे छोड़ूंगा नहीं । वह मेरी बहन

है। मेरे प्राणोंकी प्रेयसी है। उफ़! सम्पादकजी, आप यहां नहीं हैं, नहीं तो, देखते अभागिनी नर्गिसके इस निराश-सौन्दर्य को। मेरे सामने ज़मीनपर उदास बैठी हुई वह धीरे-धीरे गुनगुना रही है—

न किसी की आंखों का नूर हूँ
न किसी के दिल का क़रार हूँ!
जो किसीके काम न आ सके
मैं व' एक मुश्त गुबार हूँ!
न तो मैं किसीका रक़ीब हूँ
न तो मैं किसीका हबीब हूँ
जो बिगड़ गया व' नसीब हूँ
जो उजड़ गया व' दयार हूँ!
मेरा रंग-रूप बिगड़ गया
मेरा यार मुझसे बिछड़ गया
जो चमन ख़िज़ां से उजड़ गया
मैं उसीकी फ़स्ले-बहार हूँ!

अब उसने गुनगुनाना बन्द कर दिया है और उदास मुखसे मुझसे पूछ रही कि मैं उसे मुरारीकी मांके दर्शन कब कराऊंगा?

चन्द हसीनोंके .खुतूत

मैं जल्दही यहाँ से प्रयाग जाऊँगा और फिर कानपूर आऊंगा।

इस समय—बस।

सर्वस्व-हीन

श्रीगोविन्दहरि शर्मा



(२)

~ —)

श्रीगोविन्दहरि शर्म्मा,

नारी-सराय, कानपुर।

Cawnpore